केशवदास

भारतीय साहित्य के निर्माता

# केशवदास

लेखक

जगदीश गुप्त

साहित्य अकादेमी

*Keshavdas* : A monograph by Jagdish Gupta on the Hindi author. Sahitya Akademi, New Delhi (198




प्रथम संस्करण : 1984

साहित्य अकादेमी

**प्रधान कार्यालय**
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह रोड, नई दिल्ली 110001

**क्षेत्रीय कार्यालय**
ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700029
29, एलडाम्स रोड (दूसरा तल्ला), तेनामपेट; मद्रास 600018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400014

**SAHITYA AKADEMI**
REVISED PRICE Rs. 15.00

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली 110032

# अनुक्रम

# केशवदास और उनका युग

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भारतीय इतिहास के उत्तर मध्ययुग के अन्तर्गत आता है और उसी का एक अंग है। यद्यपि ह्रास और विकास की प्रकृतियाँ पूरे मध्ययुग में परिव्याप्त हैं तथापि समग्रत: पूर्व-मध्ययुग की अपेक्षा उत्तर-मध्ययुग सांस्कृतिक नवोत्थान का विशेष परिचायक है। भक्ति-आन्दोलन की लोकोन्मुखी आध्यात्मिक चेतना जिस सुदृढ़, गम्भीर एवं व्यापक वैचारिक भूमिका पर प्रतिष्ठित थी, आज उसकी सही पहचान उसके देश-देशान्तर-व्यापी बहुमुखी प्रभाव से की जा रही है। मानवीय गरिमा और स्वाभिमान का जो स्वर दास्यादि विविध भक्ति-भावों से समन्वित होकर उसमें व्यक्त हुआ है, वह भारतीय जन-मानस के लिए जितना सहज-स्वाभाविक लगता है, अभारतीय मन के लिए उतना ही विचित्र और विस्मयकारी प्रतीत होता है।

भक्ति-आन्दोलन ने जिन मानव-मूल्यों की, स्थापना की, वे रीतिकाल से होते हुए आधुनिक युग तक चले आये और एक बार फिर पुनरुत्थान के प्रेरक बने। रीति-परम्परा भी भाषा की अस्मिता और काव्य के वैशिष्ट्य की राजकीय मान्यता और लोक-स्वीकृति के माध्यम से प्राय: वही कार्य सम्पन्न कर रही थी, अन्यथा उसका इतना व्यापक प्रसार एवं प्रभाव असम्भव था।

वस्तुत: निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों ही मानव मन की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ हैं। भक्ति-काव्य जितना निवृत्ति-प्रधान बना रहा, रीति-काव्य उतना ही प्रवृत्ति-प्रधान होता गया। सन्धि-काल में इस दिशान्तर के प्रधान प्रेरक केशवदास सिद्ध हुए। उनसे पूर्व प्राकृत-जन-गुनगान और सीकरी सम्पर्क के विरोध की जो सशक्त विचार-धारा चली, भक्तिकाल के सभी कवि उससे परिचालित नहीं हुए। विद्यापति और जायसी ने राज प्रशस्ति करने में कोई संकोच प्रदर्शित नहीं किया न राज-दरबार के बहिष्कार की उद्घोषणा की। फिर भी, उनकी सांस्कृतिक दृष्टि गहरी और प्रभावशाली सिद्ध हुई। केशव ने ऐसे ही मध्य-मार्ग का अनुसरण अपने और अपने जैसे स्वभाव के भाषा-कवियों के लिए श्रेयस्कर समझा। उन्होंने भक्ति का समावेश करते हुए भी अपने काव्य को राजाश्रय और राजनीति से विमुख नहीं किया। उस युग के जीवन में इस प्रकार का सन्तुलन और समन्वय व्यापक स्तर पर घटित होने लगा था। भक्ति-सम्प्रदायों में कवि ही नहीं, राजा भी दीक्षित होते थे और राज-दरबारों में धर्म-

गुरुओं का सम्मान भी किया जाने लगा था। भूमि, वृत्ति, दान और विशेषाधिकार आदि देकर यह सम्मान भौतिक स्तर पर भी प्रकट किया जाता था, जिसके प्रभूत ऐतिहासिक प्रमाण हैं। कला और साहित्य का संरक्षण एक ओर राज-दरबारों में होता था, दूसरी ओर धार्मिक केन्द्रों में। भक्तिकाल में धार्मिक केन्द्रों की भूमिका प्रधान रही, रीति काल में राज-दरबारों की। जन-समाज दोनों से प्रभावित होता था। त्याग और वैभव दोनों के कीर्तिमान उसकी स्मृति में सजीव रहे। उसे यदि वितृष्णा हुई है तो धार्मिक असहिष्णुता और अमानुषिक अत्याचारों से। भारतीय जन-भावना के योग के साथ, मध्यकाल में, भागवत पुराण का विशेष आश्रय लेकर ब्रज-संस्कृति को ग्राम-संस्कृति के रूप में गौरवान्वित करने का प्रयत्न शताब्दियों तक चलता रहा परन्तु केशवदास ऐसे कवि थे, जो न केवल प्रथम आचार्य के रूप में मान्य हुए वरन् जिन्होंने ब्रज-काव्य में अभिव्यक्त, ग्राम-संस्कृति के प्रवाह में नागर-संस्कारों को अधिकाधिक समाविष्ट करने की पहल भी की। केशवदास की इस परम्परा को बिहारी जैसे नागर स्वभाव वाले कवियों ने और भी समृद्धि प्रदान की। लौकिक अर्थ में बिहारी भले ही केशव के औरस पुत्र सिद्ध न हों पर नागर स्वभाव एवं राजसी संस्कारों के संवहन की दृष्टि से वे केशवदास के आत्मज ही प्रतीत होते हैं। इन कवियों के काव्य में राधा-कृष्ण सहज स्वभाव वाले अहीर न रहकर धीरे-धीरे चतुर नागरी-नागर बन गये। वृन्दावन के करील-कुंजों की जगह राजमहलों का परिवेश उनकी लीलाओं और क्रीड़ाओं पर छाने लगा। यहाँ तक कि वे शतरंज भी खेलने लगे। सूर आदि महान भक्ति कवियों द्वारा समर्थित एवं संपोषित ग्राम-संस्कारों वाली भावधारा इतनी वेगवती थी कि वह भक्ति और रीति दोनों क्षेत्रों में अपना प्रभाव बनाये रही, परन्तु यह भी सत्य है कि रीति कवियों ने उस प्रभाव को बहुत दूर तक विपरीत दिशा में मोड़ दिया। आगे चलकर एक बार फिर मूल-ग्राम-चेतना प्रधान होती दिखायी देती है पर यह स्थिति कुछ ही कवियों में मिलती है। विशेषत: उनमें, जो ब्रज-भूमि से अधिक सम्पृक्त रहे और जिन्हें उसके लोक-साहित्य ने गहराई से प्रभावित किया।

केशवदास ने जहाँ नंद-यशोदा, राधा-कृष्ण तथा गोपी गोप-वृन्द के परम्परागत भावों का चित्रण किया है, वहाँ ग्राम-संस्कृति अपने मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्फुटित हुई है, पर जहाँ निजी कल्पनाएँ समाविष्ट की हैं, वहीं नागर-संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलक जाता है। अनेक स्थलों पर मिली-जुली स्थिति विचित्रता की सृष्टि करती दिखायी देती है। संस्कृत भाषा का पाण्डित्य-गर्व, उच्च ब्राह्मण वंशीय आभिजात्य तथा राजगुरु एवं राजकवि का संयुक्त विरुद—ये सब उन्हें नागर-संस्कृति की ओर प्रेरित करने में विशेष सहायक हुए। सम्भवत: अनेक संस्कृत काव्यों एवं कवियों ने भी उन्हें इसकी ओर प्रवृत्त किया,

क्योंकि संस्कृत साहित्य में नागर-संस्कृति पहले ही समाहित हो चुकी थी। वास्तव में, भारतीय साहित्य के विशद प्रसार में ग्राम और नगर की संस्कृतियाँ योरोपीय साहित्य की तरह परस्पर विरोधी होकर सामने नहीं आतीं। अलगाव और टकराव से अधिक उनमें साहचर्य और समन्वय का भाव मिलता है। कुछ दूर तक परस्पर पूरक वृत्तियाँ भी दिखायी देती हैं।

**केशवदास** (*1561-1613* ई०) हिन्दी के उन कवियों में हैं, जिन्होंने मुग़ल साम्राज्य के स्वर्ण-काल का ही साक्षात् अनुभव नहीं किया वरन् सुप्रसिद्ध मुग़ल बादशाह अकबर (1565-1605 ई०) और उसके पुत्र जहाँगीर (1605-1625 ई०) को भी उनके वैभवपूर्ण परिवेश में प्रत्यक्ष देखा था। अकबर के दरबार तक उनकी पहुँच उसके नवरत्नों में विशेष स्थान रखनेवाले राजा बीरबल के माध्यम से हुई थी, जिनसे उन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था। जहाँगीर का तो ओरछा राज्य से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। अकबर से विरोध होने पर जिस राज्य ने उन्हें शरण दी, वह ओरछा ही था। केशवदास के अन्य आश्रयदाता ओड़छा-नरेश वीरसिंह से जहाँगीर की गहरी मित्रता हो गयी थी। ओरछा का भव्य जहाँगीर महल इसका मूल प्रमाण है। **जहाँगीरजसचन्द्रिका** नामक अपने ग्रन्थ में केशवदास ने वीरसिंह और जहाँगीर के बीच विकसित होनेवाले बहुविध सम्बन्धों पर ऐतिहासिक सन्दर्भ में पर्याप्त प्रकाश डाला है। वीरसिंह के बड़े भाई रतनसिंह के सिर पर अकबर ने स्वयं पगड़ी बाँधी थी, ऐसा उल्लेख वीरसिंह देवचरित और कविप्रिया दोनों में मिलता है। यथा—

(1) बानौ बाँध्यो जाके माथ। साहि अकब्बर अपने हाथ ।। 2/24

(2) रणरूरो रनसिंह पुनि रतनसेन सुनि ईस।
बाँध्यो आपु जलालदीं बानो जाके शीश ।। 1/28

किन्तु जो युद्ध विवरण केशवदास ने **रतनबावनी** में दिया है, उससे ओरछा राज्य और अकबर के बीच भारी वैमनस्य का प्रमाण मिलता है। राजा प्रताप रुद्र ने ओरछा नगर की नींव डाली और केशवदास के पितामह कृष्णदत्त मिश्र को पुराण-वृत्ति प्रदान की। उनके पुत्र भारतिचन्द्र ने भरतखण्ड को रसातल जाने से बचाया। शेरशाह को नतमस्तक करनेवाले चतुर्भुज जैसे बन्धु के निःसंतान रह जाने पर उनके भाई मधुकरशाह ओरछा के राजा बने। वैमनस्य की भूमिका इन्हीं को लेकर उत्पन्न हुई। कविप्रिया के प्रारम्भ में केशवदास ने लिखा है—

सबरसाहि अकवर अवनि जीत लई दिसि चारि।
मधुकरसाह नरेस गढ़ तिनके लीन्हें मारि ।।24।।

टीकमगढ़ से प्राप्त **रतनबावनी** की मुद्रित प्रति में ओरछा पर किये गये अकबर के आक्रमण के सन्दर्भ में, 'युद्ध कौ कारण' शीर्षक से चार पद्य दिये गये हैं। **केशव पंचरत्न** में उसके सम्पादक दीन जी ने इन्हें प्रकाशित कर दिया

है। परन्तु पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उन्हें **रतनबावनी** का प्रामाणिक अंश न मानकर केवल भूमिका भाग में **केशव-ग्रंथावली** के तीसरे खण्ड के प्रारम्भ में उद्धृत कर दिया है। इनमें दिये गये विवरण के अनुसार मधुकरशाह अकबर के रूस और रूम आदि देशों तक व्याप्त यश और उसकी उदार धार्मिक नीति से प्रेरित होकर उससे मिलने दिल्ली जाते हैं। वहाँ जो घटित होता है, उसका वर्णन द्रष्टव्य है—

राजाधिराज मधुसाह नृप यह विचार उद्दित भयव।
हिन्दवान धर्मरच्छक समुझि पास अकब्बर के गयव ॥
दिल्लीपति दरबार जाय मधुसाह सुहायव।
जिमि तारन के माह इन्दु सोभित छबि छायव ॥
देखि अकब्बर साह उच्चजामा तिन केरौ ।
तब कहत भयव बुन्देलमनि, मम सुदेस कंटिक अवन ॥
(करि) कोप ओप बोले बचन, मैं देखौ तेरौ भवन।
तब बोले बचन विचारि कह्यौ कारन यहि केरौ ॥

मधुकरशाह का ऊँचा जामा देखकर अकबर ने पूछा, ऐसा क्यों है? जिस पर उन्होंने कहा मेरी निवास-भूमि कंटकाकीर्ण है। अकबर ने इसे व्यंग्य समझकर उनकी भूमि देखने की चुनौती दे दी। मधुकरशाह ने अकबर का आशय समझकर तत्काल रत्नसेन को युद्ध के लिए तत्पर हो जाने की सूचना भेज दी। अन्ततः युद्ध हुआ और उसमें रत्नसेन ने आत्मरक्षा में अपने को बलिदान कर दिया। केशव ने रतनबावनी में उनकी इसी यश-गाथा का गायन किया है। स्पष्ट है कि इस घटना से केशव की सहानुभूति भी अकबर के प्रति शेष नहीं रह गयी होगी क्योंकि वे ओरछा के स्वाभिमान से जुड़े थे और आजीवन उसका निर्वाह करते रहे। यह असम्भव नहीं है कि अकबर ने यह आक्रमण मधुकरशाह द्वारा अपने अधीनस्थ दुर्गों के अपहरण की प्रतिक्रिया में किया हो, जिसका सन्दर्भ दिया जा चुका है। कदाचित् इसी वैमनस्य को दूर करने के निमित्त, अकबर की ओर से मधुकरशाह के उत्तराधिकारी रामशाह को दरबार में बैठक प्रदान की गयी। सामान्यतया बड़े-बड़े अमीर-उमराव अकबर के दरबार में खड़े ही रहा करते थे। केशव ने **कविप्रिया** में इस युगीन-स्थिति का निरूपण करते हुए लिखा है —

कर जोरे ठाढ़े रहैं, आठो दिसि के ईस।
ताहि तहाँ बैठक दई अकबर से अबनीस ॥33॥

इन्हीं रामशाह के पुत्र इन्द्रजीत के आश्रय में केशवदास को राजगुरु और राज-कवि की ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई कि उन्हें लगा जैसे वे स्वयं राज कर रहे हों —

भूतल का इन्द्र, इन्द्रजीत राजै जुग-जुग।
केसौदास जाके राज राज सो करत है ।। **कविप्रिया 4/22**

अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर से ओरछा राज्य के अधिनायक वीरसिंह और केशवदास का सम्बन्ध कहीं अधिक प्रेरक, आत्मीय, सुदृढ़ और सुदीर्घ रहा। ओरछे में बना जहाँगीरमहल और केशव द्वारा लिखित प्रशस्ति काव्य **जहाँगीरजसचन्द्रिका** इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। **वीरसिंहदेवचरित** से भी मुग़ल काल के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पक्ष पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है तथा **केशवदास** के समसामयिक राजनैतिक जीवन की जानकारी भी मिलती है। अकबर और शहजादा सलीम के बीच बढ़ते संघर्ष में ओरछा राज्य के पराक्रमी राजकुमार वीरसिंह ने जो भूमिका निभायी, वह निर्णायक सिद्ध हुई। 1601 ई० में प्रयाग में सलीम के कहने पर वीरसिंहदेव ने अबुलफज़ल की हत्या कर दी और इस कारण अकबर की दृष्टि में वे मुग़ल साम्राज्य के प्रमुख शत्रु बन गये—

केसौराइ औवलि फजलि मारयो वीरसिंह। **वीरचरित्र**, पृ० 43

सलीम के द्वारा अकबर के समक्ष समर्पण कर दिये जाने से वीरसिंहदेव की स्थिति और भी विषम हो गयी। परन्तु 1605 ई० में अकबर की मृत्यु हो जाने से परिस्थिति में आकस्मिक परिवर्तन आ गया। रामशाह बन्दी बना लिये गये। ओरछा पर जहाँगीर का पंजा मजबूत हो गया।

जहाँगीर को पंजा लेव। राजा कों मिलवो करि नेव ।।

—**वीरसिंहदेवचरित** 14/39

बैरमखाँ के पुत्र और शाहंशाह अकबर के सिपहसालार अब्दुर्रहीम खानखाना को जो नवरत्नों में प्रखरतम दीप्ति वाले थे, केशवदास ने अपने इष्टदेव श्रीरामचन्द्र जी के पाप नाशक एवं लोक-मंगलकारी बाण से उपमित किया है।

खलन के घालिवे कौ खलक के पालिवे कौं
खानखाना एक रामचन्द्र जू के तीर सो ।।—**जहाँगीरजसचन्द्रिका**

**जहाँगीरजसचन्द्रिका** (छन्द 185) में ही उन्होंने काज़ी से जहाँगीर को लव-कुश की तरह अजेय होने का वरदान दिलाया है। स्वयं शाह सलीम प्रसन्न होकर अन्त में उनकी कविता की सराहना करते हैं और कुछ मनोनुकूल माँग लेने का अवसर भी देते हैं। केशव स्वाभिमानपूर्वक कहते हैं कि हम याचना तो एकमात्र ईश्वर से करते हैं पर आपसे इतना ही चाहते हैं कि जो हमारे आश्रित हैं, उनका कल्याण हो—

मेरे गुलामनि के हैं सलाम सलामति साहि सलेम की चाहौं ।।

जहाँगीर ने भी इस निवेदन को सहर्ष स्वीकार करके उन्हें कृतार्थ कर दिया—

जहाँगीर जू जगतपति दै सिगरो सुख-साज।
केसवराय जहांन में कियो राय तें राज ।।

हिन्दू-मुस्लिम धर्मों के सांस्कृतिक समन्वय की तत्कालीन स्थिति से केशवदास इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने मथुराधिपति भूतेश शिव के द्वारा जहाँगीर की प्रशस्ति कराने में तनिक भी संकोच नहीं किया। दोनों दीनों (धर्मों) की साहिबी की स्वीकृति का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा (छन्द 31)। जहाँगीर द्वारा फ़रमान भेजकर ओरछा का नाम जहाँगीरपुर रख दिया गया, जिसका विरोध केशवदास ने नहीं किया। इसके पीछे भी यही मानसिकता रही होगी। आगे चलकर अपने परम्परागत संस्कारों से प्रेरित होकर उन्होंने ऐसे ब्राह्मणों की आलोचना की, जो 'मलेक्ष' राजाओं की सेवा करने के लिए तत्पर हो जाते थे।

ब्राह्मण बेंचत वेदनि को सुमलेच्छू हीय की सेव करैं जू।
छत्रिय दण्डत हैं परजा, अपराध बिना द्विज-वृत्ति हरैं जू।
छाँड़ि दियो क्रम-विक्रम वैस्यन छत्रिन ज्यौं हथियार धरैं जू।
पूजत सूद्र सिला, धनु चोरत, बित्त में राजन को न डरैं जू।।

—**विज्ञानगीता** 7/14

इस छन्द में केशव का युगानुभव और आत्मालोचन दोनों सन्निहित हैं। यहाँ चारों वर्णों के दोष उन्होंने उसी प्रकार निर्दिष्ट किये हैं, जैसे तुलसी ने **रामचरितमानस** और **कवितावली** में उन्हें प्रदर्शित किया है। भले ही मुग़ल-काल स्वर्णकाल कहलाता हो परन्तु इन कवियों ने अधर्म और अपराध-वृत्ति की व्याप्ति के और भी अनेक प्रसंग वर्णित किये हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि सामाजिक स्थिति विषम और व्यापक रूप से असन्तोषप्रद थी। एक ओर विलास और वैभव और अत्याचार का अतिरेक था तो दूसरी ओर दारिद्र्य, दैन्य और कपटाचरण का। दिल्ली के जीवन का चित्र केशव ने इस प्रकार अंकित किया है—

कामकुतूहल में बिलसे निसि बार-बधू मन मान हरैं।
प्रात अन्हाइ बनाइ के टीकनि उज्ज्वल अंबर अंग धरैं।।

—**विज्ञानगीता** 3/3

पान विलास अदित आतुरी। पर दारा गमने चातुरी।।

सामान्यतः अशक्त राजाओं के लिए केशव ने लिखा है—

जिन पर राखी जाये न प्रजा। दई न जाय दुष्ट कौं सजा।।

—**वीरसिंहदेवचरित**

मठाधीशों के प्रति तो केशवदास की बड़ी तीखी प्रतिक्रिया रही है। '**रामचन्द्रिका**' में तो उन्होंने उन पर व्यंग्य किये ही हैं, अन्यत्र भी उन्हें नहीं छोड़ा है—

ठौर ठौर विराजहीं मठपाल जुक्त-कुतर्क। —**विज्ञानगीता** 7/9
चोरी करैं विभिचार करैं पुनि केसव वस्तु विचार विचारें।

—**विज्ञानगीता** 5/20

आज जनहित शब्द का बहुत प्रचलन हो गया है क्योंकि वह जनवादी दृष्टि का

द्योतक माना जाने लगा है परन्तु अब से लगभग चार शताब्दी पूर्व केशवदास ने इसका भारतीय मानववादी दृष्टि से प्रयोग किया है, वह द्रष्टव्य है—

जोई जन हित की कहै, सोई परम अमित्र।
सुख बक्ताई मानिये सन्तति मन्त्री मित्र ।।

यों जन और हित को अलग करके भी अर्थ किया जा सकता है पर उनको समस्त रूप में लेना यहाँ अधिक उपयुक्त लगता है।

केशव ईश्वर के प्रति विश्वासी होकर भी कहीं-कहीं भाग्यवादी दिखलायी पड़ते हैं—

लिख्यो करम को मेटि न जाय। कहा रंक कह राजा राय ।।

वस्तुतः यह गीता के 'दैवंचैवात्र पंचमम्' का अनुवर्ती है, जिसके अनुसार दैव पाँचवाँ कारण है। किन्तु इससे प्रयत्न का निषेध नहीं होता।

# केशव का जीवन-वृत्त

यद्यपि केशवदास ने अपनी अनेक रचनाओं में निजी जीवन से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है तथापि उनके जन्म और देहावसान की तिथियाँ अनिश्चित-सी हैं। इतना निर्विवाद है कि **रतनबावनी** उनकी पहली रचना है और **जहाँगीर-जसचद्रिका** अन्तिम। **रतनबावनी** में रचना-काल दिया नहीं है अत: काव्य का काल निर्णय भी अनुमान के आधार पर ही किया जाता रहा है, जिससे उनकी जन्म-मृत्यु की तिथियाँ प्रभावित होती हैं। रतनबावनी के प्रकाश में आने से पूर्व **रसिकप्रिया** को ही उसकी पहली रचना माना जाता रहा और उसमें दिये रचनाकाल, सं० 1648 (1591 ई०) को आधार मानकर 30 या 40 वर्ष पूर्व उनकी जन्म तिथि निर्धारित करने का उपक्रम किया गया। डॉ. विजयपालसिंह ने स्व-सम्पादित **केशव-सुधा** (द्वितीय सं०, पृ० 14) में पूरी सूची दे दी है और स्वयं लाला भगवानदीन, गौरीशंकर द्विवेदी तथा डॉ. किरणचन्द्र शर्मा द्वारा समर्थित तिथि सं० 1618 (1561 ई०) को स्वीकार कर लिया है। शिवसिंह सेंगर ने सं० 1624 (ई० 1567) डॉ. ग्रियर्सन ने सं० 1637 (1580 ई०) तथा मिश्र-बन्धुओं, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. रामकुमार वर्मा ने सं० 112 (1555 ई०) को मान्यता दी है) इसके खण्डन में कोई विशेष तर्क नहीं जुटाया गया है कि उसे निरस्त ही कर दिया जाय। हाँ, पं. गणेशप्रसाद द्विवेदी ने अवश्य अपने **सुकवि सरोज** में केशव के वंशधरों से प्राप्त वंश-वृक्ष पर लिखित इन दोहों को उद्धृत करके एक विचारणीय आधार प्रस्तुत किया है, जिसे व्यवहारत: स्वीकार किया जा सकता है—

संवत् द्वादश षट् सुभग सोरह से मधुमास।
तब कवि केसव को जनम, नगर ओड़छे बास।।
उतपति निज कुल की सुनी, ब्रज में डींग कुम्हेर।
द्विज सनाढ्य सुनि मिश्र कहि, सुजन देखि मोंहि टेर।।
यजुर्वेद श्रवणन सुनौ, गोत्र सु भारद्वाज।
शाखा सुभ कहि मार्दनी, इष्टदेव रघुराज।।

पहले दोहे के अनुसार सं० 1618 (1561 ई०) के चैत्र मास में केशव का जन्म सिद्ध होता है और वंशधर श्रवणप्रसाद की जानकारी के आधार पर रामनवमी की तिथि भी मानी जा सकती है, जो केशव की राम-भक्ति से संगति रखती है।

जन्म दिवस के किसी प्रामाणिक उल्लेख बिना यह तिथि अब भी असंदिग्ध नहीं कही जा सकती। और व्यवहारत: इसे मान लेना अनुचित नहीं प्रतीत होता। केशव के वंशधर के साक्ष्य से यह तिथि रामनवमी भी मानी जा सकती है। उपर्युक्त दोहों से निम्नलिखित सूचनाएँ भी मिलती हैं—

ओरछा राज्य में निवास
ब्रज प्रदेश में स्थित 'डींग कुम्हेर' से कुलाद्भव
जाति सनाढ्य ब्राह्मण, अल्ल मिश्र
गोत्र भारद्वाज शाखा मार्दनी
इष्टदेव—रघुवंशी राम

इनमें से दूसरी और चौथी सूचना को छोड़कर शेष सभी केशव द्वारा दिये गये अन्त:साक्ष्य से समर्थित एवं प्रमाणिक सिद्ध होती हैं। यथा—

नदी बेतवै तीर जहँ, तीरथ तुंगारन्य।
नगर ओड़छो बहु बसे, धरनीतल मैं धन्य॥

—**रसिकप्रिया**, 1/3

सनाढ्य जाति गुनाढ्य है, जग सिद्ध सुद्ध सुभाउ।
कृस्नदत्त प्रसिद्ध हैं जहँ मिश्र पंडितराउ॥

—**रामचन्द्रिका**, 1/4

मुनिपति यह उपदेस दै जबहीं भये अदृस्ट।
केशवदास तहीं कर्‌यो रामचन्द्र जू इस्ट॥

—**रामचन्द्रिका** 1/18

बेतवा तट और ओरछा नगर का वर्णन केशव ने बड़ी तन्मयता और सूक्ष्मता से अन्यत्र भी किया है। थोड़े पाठ-भेद से यह छंद **कविप्रिया** (7/15) **वीरसिंह-देवचरित** तथा **विज्ञानगीता** (1/14) में भी मिलता है, जिससे सिद्ध होता है कि यह वर्णन केशव को अतिप्रिय था।

ओड़छे तीर तरंगिणि बेतवै, ताहि तरै नर केशव को है।
अर्जुन बाहु प्रबाह प्रबोधित रेवा ज्यों राजन की रज मो है।
ज्योति जगै जमुना सी लसै जग लाल विलोचन पाप वियो है।
सूरसुता सुभ संगम कुंग तरंग तरंगिणि गंग सी सोहै॥

**कविप्रिया** में उन्होंने स्पष्ट कहा है—"वारिये नगर और ओड़छा नगर पर" (7/5)। **विज्ञानगीता** के प्रारम्भ में दिये विवरण से भी ज्ञात होता है कि वह कृष्णदत्त मिश्र के पौत्र थे और काशीनाथ मिश्र के पुत्र। उनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र भी कवि थे। उनका तथा छोटे भाई कल्याणदास मिश्र का नाम उसमें नहीं दिया है किन्तु अपने कुंभवार सनाढ्य होने तथा वंश-परम्परा के वेदव्यास से सम्बद्ध होने की सूचना अवश्य दे दी है।

तहाँ प्रकाश सो निवास मिश्र कृष्णदत्त को।
अशेष पंडिता गुणी सुदास विप्र-भक्त को।
सु काशिनाथ तस्य पुत्र विज्ञ काशिवास को।
सनाढ्य कुंभवार अंश वंश वेद व्यास को।

केशव के विशेषज्ञ डॉ. किरणचन्द्र शर्मा ने उनका पूरा वंश-वृक्ष प्रकाशित कर दिया है। कविप्रिया के प्रद्योत—2 में दिये गये विस्तृत विवरण से सनाढ्य वंश का सम्बन्ध ब्रह्माजी के पुत्र सनकादि से सिद्ध होता है तथा वंशजों का मथुरा मण्डल में राजा रामचन्द्र के द्वारा सात सौ ग्राम प्राप्त करना, दिल्लीपति अलाउद्दीन की अपार कृपा पाना, गोपालचलगढ़ (ग्वालियर) के दुर्गपति द्वारा पाठ-पूजा के साथ तोमरपति का अनन्य आश्रय मिलना आदि भी प्रमाणित होता है। पौराणिक वृत्ति और राजसम्मान केशवदास और उनके दोनों भाइयों को भी सुलभ हुआ, जिसका श्रेय रुद्रप्रताप के गौरवशाली पुत्र मधुकरशाह को है, जिन्होंने उनके पिता को भी सम्मान दिया था—

जिनको मधुकरशाह नृप बहुत कर्‌यो सनमान।
तिनके सुत बलभद्र शुभ प्रगटे बुद्धि निधान।।
बालहि ते मधुशाह नृप जिनपै सुने पुरान।
तिनके सोदर है भये केशवदास कल्यान।।

केशवदास ने अनेक स्थलों पर अपने कुल की महान पाण्डित्य-परम्परा का जितनी गरिमा के साथ बखान किया है, उतनी ही हीनता तथा संकोचशीलता अपने सन्दर्भ में व्यक्त की है। वे बराबर अपने को 'मन्दमति', 'शठ कवि' एवं 'भाषा-कवि मतिमन्द' आदि कहते हैं तथा वंशजों के संस्कृत-ज्ञान के समक्ष अपने भाषा-ज्ञान को नगण्य मानते हैं। उनका सुप्रसिद्ध कथन है—

भाषा बोलि न जानही जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भी मन्दमति तेहि कुल केशवदास।।

—**कविप्रिया** (2/17)

कदाचित् इसीलिए केशव का काव्य पाण्डित्य से बोझिल दिखायी देता है और भाषा प्रयोग करते हुए भी वे बार-बार संस्कृत की तत्सम शब्दावली तथा सन्दर्भ-गर्भित शैली की ओर उन्मुख हो जाते हैं। यह उनका वंशानुगत संस्कार है और उनकी मानसिकता को बनाने एवं विकसित करने का केन्द्रीय आधार भी।

अपने दाम्पत्य-जीवन के विषय में केशवदास ने विशेष कुछ नहीं कहा है। **विज्ञानगीता** में दिये एक सन्दर्भ से उनके परिणय एवं सन्तति-लाभ का निश्चित प्रमाण मिलता है, जो कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है—

सुनि सुनि केशवराइ सों रीझि कह्यो नृपनाथ।
माँगि मनोरथ चित्त के कीजै सबै सनाथ।।

वृत्ति दई पुरुखानि की, देऊ बालनि आसु।
मोहि आपनो जानि कै, गंगातट देउ वासु॥

यहाँ केशवदास इस बात का उल्लेख करते हैं कि वीरसिंह देव ने उनके नव-काव्य को सुनकर प्रसन्नता प्रकट की और अभिलषित वस्तु माँग लेने का आग्रह किया। कवि ने तीन चीजें माँगीं। पूर्व पुरुषों द्वारा प्राप्त वृत्ति, जो किसी कारण छिन गयी थी तथा उन्हें पुन: प्रयाग में निवास करने की सुविधा। इससे उनके परिवारिक जीवन का स्पष्ट परिचय मिलता है और उसकी विषमता का भी आभास होता है। यह विषमता सदा नहीं रही होगी। वीरसिंह ने केशव को माँगने का अवसर ही नहीं दिया वरन् उनकी सभी माँगें स्वीकार कर लीं।

वृत्ति दई, पदवी दई, दूरि करौं दुख त्रास।
जाय करौ सकलत्र श्री गंगातट बस वास॥

इस दोहे के सूक्ष्म अर्थ पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि वृत्ति और पदवी तो पहले ही दे दी गयी थी किन्तु अपना जानकर अपने पास रखने की इच्छा प्रकट करके सपरिवार प्रयाग-वास के लिए सहमति भी प्रदान की गयी, जिसका तात्पर्य है कि केशवदास को वीरसिंह से पुन: वैसी आत्मीयता प्राप्त न हो सकी, जैसी प्रारम्भ में सुलभ थी। श्री हरिहरप्रसाद द्विवेदी ने इसे देश-निकाले के आदेश के रूप में ग्रहण किया है। (द्र० बेतवा-वाणी, 1979, वर्ष 2, अंक 2, पृ० 34)

ओरछे में तीस वर्ष से अधिक समय तक विद्यमान रहनेवाले केशव अन्तत: उसे छोड़कर तीर्थराज प्रयाग जाने पर विवश हुए और कदाचित् उनका देहावसान भी वहीं हुआ। यह घटना सं० 1667 (1610 ई०) के बाद की है।

केशव की मृत्यु-तिथि के विषय में भी स्थिति प्राय: अनिश्चित है। मिश्र बन्धुओं से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक यह तिथि सं० 1674 (1617 ई०) मानी गयी है। दहिनजी आदि अन्य विद्वानों ने तुलसी और केशव के समकालीनों पर विचार करते हुए इसे सं० 1680 (1623 ई०) तक ले जाना सम्भव माना है। **जहाँगीरजसचन्द्रिका** की रचना सं० 1669 (1612 ई०) में हुई और यह केशव की अन्तिम रचना मानी जाती है। इस दृष्टि से सं० 1674 (1617 ई०) अधिक संभाव्य प्रतीत होती है। बहुसंख्यक विद्वान इसी पक्ष में हैं। प्रयाग के गंगा-पुत्रों के बहीखाते टटोलने से शायद इस विषय में कोई निर्णायक सामग्री उपलब्ध हो सके।

प्रारम्भिक जीवन में केशव को आश्रयदाताओं की खोज में भटकना नहीं पड़ा क्योंकि ओरछे में वह राज-गुरु के पद पर अपने वंशानुगत अधिकार के साथ प्रतिष्ठित हुए। केवल कवि रूप में उन्हें अस्थायी आश्रय नहीं मिला था। राजा रामशाह और उनके अनुज इन्द्रजीत सिंह की उन पर विशेष कृपा रही। इन्द्रजीत

सिंह के विषय में केशवदास ने लिखा है कि उनके राज्य में तो वह राजवत् प्रतिष्ठित रहे—

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग-जुग
केसौदास जाके राज राज सो करत है ।।

—**कविप्रिया**, 4/21

इन्द्रजीत के यश और गौरव का केशव ने उन्मुक्त भाव से वर्णन किया है। **कविप्रिया** इसका विशेष प्रमाण है। **रसिकप्रिया** की रचना के बाद ही केशव को देशव्यापी प्रसिद्धि मिल गयी थी, जिसका साक्ष्य उनकी इस पंक्ति से मिलता है—

एक तहाँ केशव सुकवि जानत सकल जहान ।

यहाँ केशव ने अपने को स्वयं 'सुकवि' के रूप में विश्व-विख्यात बताया है। उस काल में भी जहान का अर्थ कम विस्तृत नहीं था, जैसा केशव की रचनाओं से ज्ञात होता है। वे स्वयं भले ही अधिक भ्रमणशील न रहे हों पर उन्हें देश-देशान्तर का बोध था। आश्रयदाताओं की यश-व्याप्ति के प्रसंग में तथा अन्य सन्दर्भों में भी, उन्होंने पश्चिमोत्तर भारत से जुड़े एशिया के बहुसंख्यक देशों के नाम गिनाये हैं तथा पूर्व और दक्षिण के देशों का भी उन्हें परिचय था।

इतना भौगोलिक ज्ञान हिन्दी ही नहीं, हिन्दीतर भाषाओं के मध्यकालीन कवियों में भी कठिनाई से उपलब्ध होगा। इस विषय में केशव भक्त-कवियों से भी आगे हैं।

राजगुरु एवं राजकवि के अतिरिक्त केशवदास को अपने उक्त आश्रय-दाताओं से 'मित्त' और 'मन्त्री' जैसा व्यवहार भी मिला, जिसका आभास **कविप्रिया** (2/21) से मिलता है।

इन्द्रजीत के हेत तब राजा राम सुजान ।
मान्यो मन्त्री मित्र कै केसवदास प्रमान ।।

इन्द्रजीत सिंह के साथ केशवदास प्रयाग के त्रिवेणी तट पर गये थे, जहाँ उनसे वरदान माँगने को कहा गया तो उन्होंने केवल सदा-सर्वदा एकरस कृपा की ही याचना की। सुख-वैभव, पद-ऐश्वर्य सब कुछ तो उन्हें पहले से ही प्राप्त था। इससे केशव का शील-सौजन्य ही प्रकट होता है। लोभी-लोलुपों जैसा निम्न-स्तरीय व्यवहार करते वे कभी दिखायी नहीं देते। इसीलिए उनका गुरुत्व काव्य क्षेत्र में भी विशेष सम्माननीय सिद्ध हुआ। यथा—

गुरु करि मान्यो इन्द्रजित तन मन कृपा विचारि ।
ग्राम दये इकवीस तब ताके पाँय पखारि ।।

आश्रयदाता राजा स्वयं जिसके चरण प्रक्षालित करे, सम्यक् भूमिदान दे और अन्ततः अपने को कृतार्थ माने—ऐसी सम्माननीयता साहित्य के क्षेत्र में एक

अप्रतिम कीर्तिमान क्यों न बने? केशव इसी गरिमा के प्रतीक कवि हैं। रामशाह और इन्द्रजीत सिंह के अनन्तर उन्हें वीरसिंहदेव और उनके बड़े भाई रत्नसिंह की छत्रच्छाया प्राप्त हुई किन्तु वैसा परितोष नहीं मिला। वीरसिंह-देव का प्रारम्भिक जीवन बहुत संघर्षमय रहा। कवि ने **वीरसिंहदेवचरित** में उसका विस्तार से वर्णन किया है। युद्ध बचाने के प्रयास में केशवदास ने मध्य-स्थता का दायित्व ग्रहण किया पर सफल न हो सके फलत: राज-कृपा एक ओर से कट गयी। उन पर विपक्ष से मेल का आरोप लगा और वीरसिंह द्वारा उनकी वृत्ति तक छीन ली गयी। पारिवारिक जीवन संकटमय हो गया। सम्भवत: **विज्ञानगीता** उन्होंने अपनी आत्मिक शान्ति के लिए ही लिखी और वह उन्हें मिली भी। राज-कोप भी दूर हो गया पर ओरछा छूट ही गया, जैसा कि निर्दिष्ट किया जा चुका है। कुछ समय के लिए केशव को मथुरा और मेवाड़ की शरण लेनी पड़ी। **जहाँगीरजसचन्द्रिका** में दिये गये विवरण के अनुसार केशवदास पहले काशी गये। जब वहाँ शान्ति न मिली तो मथुरा आये। बिहारी को केशव का पुत्र माननेवाले इसे 'बसि मथुरा ससुराल' से जोड़ते हैं। सम्भव है, केशव की मथुरा यात्रा ऐसे समधी-सम्बन्ध से भी जुड़ी रही हो पर उसका मुख्य कारण वीरसिंह बुंदेला द्वारा वृन्दावन में 'केशवराय' के मन्दिर की स्थापना करना लगता है, जो सं० 1688 (1631 ई०) की घटना है। मथुरा में केशव को अपेक्षित सफलता न मिली और उन्हें कृष्णोपासना के स्थान पर भूतनाथ प्रेतेश की उपासना में लीन होना पड़ा।

भूरि भाव भूतनाथ परम प्रभाव तब,
मथुरा अभूत भाँति प्रभुता समेत हौं।

केशवदास म्लेक्षों को असुरवत् मानते थे और असुरों के गुरु एवं आराध्य हैं, महा-देव भूतनाथ। सम्भव है, यह बात उनके शिवाराधन के मूल में रही हो क्योंकि **जहाँगीरजसचंद्रिका** में भूतेश से वरदान माँगने के अनन्तर वे बैरम खाँ का गुणानुवाद करते हैं फिर उनके सुप्रसिद्ध पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना की प्रशस्ति करते हैं। बात यहीं तक नहीं रुकती। वे रहीम के पुत्र एलिच शाहनवाज का सुयश भी वर्णित करते हैं, जिससे उनकी भेंट किसी पूर्व-पुण्य जन्म भाग्योदय की शक्ति पाकर होती है।

कौनहु पूरब पुण्य ते उदय-भाग बल पाय।
एलच साहनिवाज को मिलयौ केशवराय ॥

उद्यम और कर्म के विवाद से जिस **द्विज दीन** का सम्बन्ध केशव ने जोड़ा है, वह स्वयं केशव ही है, ऐसा मत हरिहरनिवास द्विवेदी ने **बेतवा-वाणी** (पृ० 36) में व्यक्त किया है। समस्या का समाधान जहाँगीर के दरबार में जाकर होता है। हो सकता है कि केशवदास को एलिच शाहनवाज की सहायता से जहाँगीर के

नौरोज़ दरबार (25 अप्रैल सन् 1612) में प्रवेश मिल गया हो और केशवदास ने वहाँ उन्हें आशीर्वाद देते हुए अपनी दुर्दशा दूर करने का संकेत किया हो—

**'याहि तें केशवराय असीम पढ़ै, अपनो कौर नैक निहारौ ।**

और यह भी सम्भव है जहाँगीर का निम्नलिखित कथन इसी अवसर से सम्बद्ध हो—

अपने जी की बात तुम माँगहु केसौराय।
रीझे मन क्रम वचन हम, तब कविता सुख पाय ।।

केशव की कविता ने उन्हें इतना रिझा लिया कि वे उनकी मनोकामना पूर्ण करने के लिए तत्काल तत्पर हो गये। इसका उत्तर देते हुए केशवदास ने उनके प्रति मंगलकामना ही व्यक्त की, कोई विशेष याचना नहीं की। किन्तु इस नयी राज-कृपा से उन्हें पुन: सुख-वैभव प्राप्त हो गया—

जहाँगीर जू जगतपति दै सिगरो सिरताज।
केसवराय जहान में कियो राय ते राज ।।

जहाँगीर की आत्मकथा में किन्हीं बिहारीदास को राजदूत बनाकर राणा अमर-सिंह की राजसभा में भेजने के उल्लेख को द्विवेदीजी ने केशव-पुत्र बिहारी से सम्बद्ध करते हुए बिहारी-सतसई के इस दोहे में उसी नौरोज़ दरबार का सन्दर्भ खोज निकाला है—

श्री नरहरि नरनाह कों दीनी बाँह गहाइ।
सगुन आगरे आगरें रहत आइ सुख पाइ ।।

केशवदास ने **बीरसिंहदेवचरित** में मानसिंह, अमरसिंह और वीरसिंह इन तीन सिंहों की गणना की है। केशवदास और बीरसिंह (नरनाह) का सम्बन्ध पुन: अनुकूल हो गया हो, ऐसा अनुमान किया गया है। भूतेश-प्रेतेश की आराधना इस रूप में फलवती हुई हो और इसी कारण केशव के प्रेत-योनि में चले जाने की कथा भी प्रचलित हुई हो, यह असम्भव नहीं है। देव कवि ने बीरबल, केशव और गंग की मृत्यु का सन्दर्भ देते हुए लिखा है—

एक दल सहित बिलौने एक पल ही में,
एक भये भूत एक मींजि मारे हाथी ने।

अर्थात् बीरबल ससैन्य युद्ध में मारे गये, केशवदास भूत (प्रेत) हो गये तथा कवि गंग जहाँगीर के द्वारा हाथी से कुचलवा दिये गये। ये सभी घटनाएँ ऐति-हासिक हैं पर तुलसी की प्रेरणा से **रामचन्द्रिका** के इक्कीस बार पाठ करने पर कुएँ में गिरे हुए केशवदास का प्रेत-योनि से उद्धार एक किंवदन्ती ही प्रतीत होता है।

केशवदास के अभिन्न कवि मित्र बीरबल तथा उनकी अन्तरंग शिष्या प्रवीणराय मायुर का आगे विवेचन किया गया है।

# केशव की रचनाओं का अन्वेषण एवं विनिश्चय

हिन्दी साहित्य के देशी-विदेशी इतिहासकारों के अभिमतों और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों तथा विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित शोधपरक एवं समीक्षात्मक लेखों के आधार पर केशवदास विषयक कतिपय विशिष्ट अध्ययन सम्पन्न किये जा चुके हैं। पं. **कृष्णशंकर शुक्ल** ने सन् 1940 के आसपास **केशव की काव्य-कला** नामक प्रसिद्ध समीक्षा पुस्तक प्रस्तुत की। इसके अनुसार केशवदास की लिखी हुई सात पुस्तकें प्राप्त हैं :—

(1) रामचन्द्रिका (2) कवि प्रिया (3) रसिक प्रिया (4) विज्ञान गीता (5) रतनबावनी (6) वीरसिंहदेव चरित्र (7) जहाँगीरजस चन्द्रिका।

इन सात पुस्तकों के अतिरिक्त **लाला भगवानदीन** ने उनकी तीन और पुस्तकों के विषय में लिखा है। परन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उनमें से दो तो अप्राप्य हैं। वे ये हैं—

(1) छंद शास्त्र का कोई ग्रंथ (छंद माला का नाम नहीं दिया गया।)

(2) राम अलंकृत मंजरी

(3) नखशिख

इनमें से तीसरी पुस्तक को लाला जी ने देखा था परन्तु उनकी सम्मति में वह कोई महत्त्व की पुस्तक नहीं है। उपर्युक्त सात पुस्तकों में भी प्रथम चार ही अधिक प्रसिद्ध हैं, ऐसा मत ग्रन्थकार ने व्यक्त किया है। 1957 में प्रकाशित आचार्य कवि केशवदास नामक पुस्तक में डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा ने बताया है कि खोज रिपोर्टों के अनुसार तो केशव के नाम से जो ग्रन्थ मिलते हैं उनकी संख्या एक दर्जन से ऊपर है किन्तु 8 ग्रन्थ ही प्रामाणिक ठहराये गये हैं, जो रचनाक्रम से इस प्रकार हैं—

| | |
|---|---|
| (1) रसिक प्रिया सं० 1648 | (5) रतनबावनी सं० 1660 |
| (2) रामचन्द्रिका सं० 1658 | (6) वीरसिंहदेव चरित्र सं० 1664 |
| (3) नख शिख सं० 1658 | (7) विज्ञानगीता सं० 1667 |
| (4) कविप्रिया सं० 1658 | (8) जहाँगीरजस चन्द्रिका सं० 1669 |

अपनी 'रीतियुगीन काव्य' नामक अन्य पुस्तक में, डॉ. वर्मा ने केशवदास के नाम से प्रचलित अन्य जिन अप्रामाणिक ग्रन्थों का उल्लेख किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—

(9) जैमुनि की कथा, (10) हनुमान जन्म लीला, (11) बालि चरित्र (12) आनन्द लहरी, (12) रस ललित, (14) कृष्ण लीला (15) अमी घूँट (16) रामालंकृत मंजरी।

**पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र** के सम्पादन में, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद से तीन भागों में **केशव-ग्रन्थावली** भी प्रकाशित हो चुकी है। इस ग्रन्थावली में केशवदास के निम्नलिखित ग्रन्थ समाहित हैं—

खण्ड 1—रसिकप्रिया, कविप्रिया

खण्ड 2—रामचन्द्रिका, छन्दमाला, शिख नख

खण्ड 3—रतनबावनी, वीरचरित्र, जहाँगीरजसचन्द्रिका, विज्ञान गीता

## रचना-क्रम एवं ग्रन्थ-परिचय

केशवदास के विशेषज्ञ डॉ. **विजयपाल सिंह** ने 'केशव और उनका साहित्य' तथा 'केशव-सुधा' में उनकी पूर्वोक्त नौ कृतियों के अतिरिक्त 'बारहमासा' को एक स्वतन्त्र कृति मानते हुए उनका कालानुक्रम इस प्रकार दिया है—

| | |
|---|---|
| 1. रतनबावनी—सं० 1638 से 1640 | (ई० 1581-1583) |
| 2. रसिकप्रिया—सं० 1648 | (ई० 1591) |
| 3. नखशिख —सं० 1657 | (ई० 1600) |
| 4. बारहमासा—सं० 1657 | (ई० 1600) |
| 5. रामचन्द्रिका—सं० 1658 | (ई० 1601) |
| 6. कविप्रिया —सं० 1658 | (ई० 1601) |
| 7. छन्दमाला —सं० 1659 | (ई० 1602) |
| 8. वीरसिंहदेवचरित—सं० 1664 | (ई० 1607) |
| 9. विज्ञान गीता—सं० 1667 | (ई० 1610) |
| 10. जहाँगीरजसचन्द्रिका—सं० 1669 | (ई० 1612) |

इनके अतिरिक्त **'रामालंकृत मंजरी'** को सन्देहास्पद रचना बताते हुए शेष सभी को केशव नामधारी अन्य कवियों की रचना बताया है। **'वीरसिंह देव चरित'** वस्तुतः **'वीर चरित'** का ही नामान्तर है। जो रचना-तिथियाँ ऊपर निर्दिष्ट हैं, उनमें से अधिकांश केशव द्वारा स्वयं उल्लिखित हैं। डॉ. किरनचन्द्र शर्मा ने अपने शोध-ग्रन्थ में उन्हीं नौ ग्रन्थों को प्रामाणिक माना है, जो केशव ग्रन्थावली में प्रकाशित हुए हैं। **'बारहमासा'** स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर वास्तव में कविप्रिया का अंग है। केशव ने उसे वहाँ शिक्षाक्षेपालंकार के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। सम्भव है, पहले उसे स्वतन्त्र रूप ढंग से रचा गया हो और बाद में ग्रन्थ का अंग बना दिया गया हो। सूर आदि और भी अनेक कवियों की रचनाओं में ऐसा घटित हुआ है। अतएव **'बारहमासा'** की प्रामाणिकता असंदिग्ध

है। यह लोक-परम्परा से ग्रहीत ऐसा काव्य रूप है, जिसे शास्त्रीय ग्रन्थों तथा प्रबन्ध काव्यों दोनों में स्थान मिला है।

## रतनबावनी

केशव की इस प्रारम्भिक रचना को 'वीरगीत' की संज्ञा दी गयी है। वस्तुत: यह पूरा काव्य शुरू के तीन और मध्य के आठ दोहों को छोड़ कर छप्पय छन्दों में रचित है। दोहा और छप्पय मुक्तक-प्रकृति के छन्द हैं। इनमें उन्हीं के माध्यम से कथा-कथन भी किया गया है। अत: इस काव्य को 'मुक्तक प्रबन्ध' मानना उचित ही है। किसी प्राचीन हस्तलेख के आधार पर इसका प्रथम मुद्रण टीकमगढ़ राज्य के प्रताप प्रभाकर प्रेस में हुआ। तदनन्तर **लाला भगवानदीन** ने इसे **'केशव पंच-रत्न'** में छाप दिया। ग्रन्थावली में यह इन्हीं आधारों से प्रकाशित की गयी है। इसमें 52 की जगह 53 छन्द हैं क्योंकि एक संख्या की द्विरुक्ति हो गयी थी। मुद्रित प्रति में युद्ध के कारण की सूचना देने वाले चार छप्पय और मिलते हैं, जो संख्यात्मक मर्यादा के कारण ग्रन्थ के अंश नहीं माने जा सकते। सम्भव है, केशव ने ही उन्हें बाद में आवश्यक समझकर जोड़ दिया हो। इन छन्दों के अनुसार, राजाधिराज मधुकरशाह यह विचार करके शाहंशाह अकबर के दरबार में गये कि वे हिन्दुओं के धर्मरक्षक हैं। यद्यपि रूस-रूम, ईरान-तूरान और बलख-बुखारे तक उनका आतंक व्याप्त है। दरबार में पहुँचते ही मधुकरशाह का ऊँचा जामा देखकर अकबर ने उनसे प्रश्न किया कि ऐसा क्यों है? इस पर राजा ने सूचित किया कि उनकी बुन्देली भूमि कण्टकमय है। इस उत्तर से रुष्ट होकर अकबर ने उस भूमि को देखने की इच्छा प्रकट की, जिसकी सूचना पत्र द्वारा मधुकरशाह ने अपने पुत्र रत्नसेन के पास भेज दी। उन्हें अकबर के वचन तीर के समान लगे और उनका पत्र पढ़कर अपनी भूमि की रक्षा का भाव रत्नसेन के मन में भी जाग्रत हुआ, क्योंकि उसमें लिखा था—

तुव भुजन भार है कुँवर यह रतनसेन सोभा लहिय।
कछु दिवस गए गढ़ ओड़छो दिल्लीपति देखन चहिय॥
सुनत पत्र मधुसाह को रतनसेन ततकाल।
करिय तयारी जुद्ध की रोस चढ़ों जिन माल॥

युद्ध की यह पृष्ठभूमि विश्वसनीय प्रतीत होती है। अपने ससैन्य अप्रतिहत प्रयाण से पूर्व अकबर ने भी एक पत्र रत्नसेन को लिख दिया था, जिसे पढ़कर उसमें वीरोन्माद जाग उठा।

बाँचो खत तब कुँवर हृदय महँ बहुत सु फुल्लिव।
आज रखहुँ कुल-सहित बचन साथिन सन बुल्लिव।

लिखि मलेछ यह बात ज्वाब सबहीं सिखि दिज्जहु ।।
तुम सब सिर मम भार पीठ पर बल सब किज्जहु।
जो रतनसेन मधुशाह-सुव अँगद सम पग रूप्पिहहिं।
कहि 'केसव' पति सिर धारि पुनि साहिदलह तब लुट्टिहिं ।।5।।

अपने वंश-गौरव और आन का स्मरण कर विधर्मी आक्रमणकारी को उत्साहपूर्वक उचित उत्तर देने के लिए सब कटिबद्ध हो गये। केशव ने इसी वीर-भाव को केन्द्र में रखकर रत्नसेन के देश रक्षात्मक युद्ध में रत होकर सेना सहित आत्मोत्सर्ग का अत्यन्त ओजस्वी वर्णन किया है। कवि ने पौराणिक शैली अपनाकर रत्नसेन के शौर्य एवं साहस की परीक्षा लेने के लिए साक्षात् गोपाल-कृष्ण को विप्र रूप में सेना प्रयाण के समय सामने प्रस्तुत कर दिया है । कुमार से वे अनेक प्रश्न करते हैं और आगामी विभीषिका के प्रति सचेत भी। वे अन्त में उसके तेजस्वी उत्तर से प्रसन्न होकर वरदान माँगने को कहते हैं, जिस पर रत्नसेन अपने लिए कुछ माँगने के स्थान पर अपने पिता एवं परिवार की रोम-रोम रक्षा का वरदान माँगते हैं और तदनन्तर अपने वीर साथियों के समक्ष किसी के 'सत्त' से न डिगने की घोषणा करते हैं । साथी दूने उत्साह से उत्तर देते हैं । इस पर—सारे वृद्धजन कुमार को आश्वासन देते हैं कि पहले हम युद्ध में उतरेंगे । हमारे आगे तुम्हारा युद्ध करना हमारे लिए डूब मारने की बात है । हमीं भाग जायेंगे तो युद्ध कौन करेगा ? वयस्क शूरवीरों के ऐसे शब्द सुनकर रत्नसेन का संकल्प और भी दृढ़ हो गया। केशव ने इस स्थल को अलौकिक कविता के स्फुरण का बिन्दु माना हैं और दिव्य उपमानों को सन्देह अलंकार में संग्रथित करके अपनी काव्य-शास्त्रज्ञता का परिचय 'उपमा वर्णन' शीर्षक देकर प्रकट रूप दे दिया है, जिससे उनकी भावी दिशा एवं प्रकृति का स्पष्ट संकेत मिलता है। यथा—

लखि लोक-ईस गुर ईस मिलि रचि कविता कविता ठई ।
सुर-ईस ईस जगदीस मिलि एक एक उपमा दई ।।35।।

उपमावर्णनम्

किधौं सत्त की सिखा सोम-साखा सुखदायक ।
जनु कुल-दीपति-जोति जुद्ध-तम मेटन लायक ।
किधौं प्रगट पति-पुंज पुन्य पल्लव करि पिखिवय ।
किधौं कित्ति पाताल तेज-मूरत करि लिखिवय ।
कहि 'केसव' राजत परमपर रतनसेन-सिर सुम्भियहु ।
जनु प्रलय-काल फनपति कहूँ (सु) फनपति फन उद्रित कियहु।।36।।

'रतनबावनी' में केशवदास की राम-भक्ति का प्रारम्भिक संस्कार भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, जिसे 'रामचन्द्रिका' का बीज माना जा सकता है । 'अंगद

सम पद रुप्पिहहिं' तथा 'ज्यों रावन पर राम' जैसे अप्रस्तुत विधान में ही उन्होंने राम कथा का समावेश नहीं किया है अपितु एक स्थल पर पार्षद-सहित साता और राम लक्ष्मण के रत्नसेन के संकट में सहायता करने के भाव से, प्रकट होने का वर्णन किया है। विप्ररूप धारण करके आये गोपाल-कृष्ण ही राम रूप धारण कर लेते हैं।

हाटक जटित किरीट सीस स्यामल तनु सोंहै।
हाथ धरे धनु-बान देखि मनमथ मन मोहै।
जामवन्त हनुमन्त विभीषन भूपति-भूषन।
'केसव' कपि सुग्रीव संग अंगद अरि-दूषण।
संग सीता सेष असेषमति, गुन असेष अंग अंग प्रति।
जहँ रतनसेन संकट विकट (सु) प्रकट भये रघुवंस पति ॥26॥

इस प्रकार प्रकट होकर राम ने पूर्व जन्म की कथा सुनायी। एक बार नारद बैकुण्ठ धाम में गये, जहाँ विष्णु लक्ष्मी के साथ शेषशायी थे। नारद अपने स्वागत के लिए तत्पर न देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और शाप दे दिया। फलस्वरूप विष्णु को रामावतार ग्रहण करके उनको परितुष्ट करना पड़ा। नारद को अपना पार्षद बनाकर विष्णु भगवान ने उन्हें विशेष आनन्दित किया। तदनुसार विप्ररूप धारण करके विष्णु ने विप्रवंश की महत्ता ही नहीं बढ़ायी वरन् समाज को विप्र-पूजा का सन्देश भी दिया है। यह प्रसंग उनके युग तक चली आयी ब्राह्मणवादी सांस्कृतिक चेतना की उस धारा का परिचय देता है, जिस पर केशवदास को अटूट आस्था थी। स्वयं ब्राह्मण होने के नाते वे इसमें आत्मगौरव की प्रतीति भी करते होंगे। इसमें सन्देह नहीं वरन् आगे की रचनाओं में तो इसके स्पष्टत: अनेक प्रमाण मिलते हैं।

इस काव्य की भाषा परम्परित वीर काव्य में प्रयुक्त अपभ्रंशाभास भाषा है, जिसकी झलक केशव की परवर्ती रचनाओं में भी कहीं-कहीं मिल जाती है। कुछ प्रयोग असाधारण हैं और भाषाविदों का विशेष ध्यान आकृष्ट करते हैं।

'बावनी' काव्य रूप देवनागरी वर्णमाला के बावन अक्षरों के आधार पर विकसित हुआ, ऐसा कहा जा सकता है पर केशवदास ने **'रतनबावनी'** की रचना उसका अनुसरण करते हुए नहीं की है। भूषण की **'शिवा बावनी'** भी ऐसी मुक्ति का परिचय देती है यद्यपि उसमें छप्पय की जगह कवित्त छन्द को स्थापित किया गया है। वीरतापूर्ण यशोगान की बात उसमें भी है पर कथा-सूत्र के अभाव में **'रतनबावनी'** को प्रबन्ध मुक्तक कहना सम्भव नहीं है।

## रसिकप्रिया

**'रसिकप्रिया'** केशवदास की पहली कृति है, जो उनके आचार्यत्व की विश्वसनीय प्रतीति कराती है तथा आगे की सम्भावनाओं का संकेत भी करती है। पाठानुशीलन की दृष्टि से इसकी लगभग पचास प्राचीन प्रतियों का अवलोकन-मनन करने के अनन्तर **पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र** ने यह धारणा व्यक्त की है कि समय-समय पर कवि द्वारा सम्भवतः **'रसिकप्रिया'** में कम से कम तीन बार प्रवर्द्धन हुआ। (सम्पादकीय, केशव ग्रन्थावली, खण्ड 3, पृ० 6) । **रसिकप्रिया** का रचनाकाल ग्रन्थारम्भ में कवि ने स्वयं दे दिया है—

संवत सोरह सै बरष बीते अठतालीस।
कातिग सुदि तिथि सप्तमी बार बरनि रजनीस ॥

इसके अनुसार रसिकप्रिया सं० 1648 कार्तिक शुक्ला सप्तमी को सोमवार के दिन समाप्त हुई। इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। ओरछे के परम प्रतापी राजवंश में उत्पन्न इन्द्रजीत के सुखद आश्रय में उन्हीं के आग्रह से केशवदास ने इसकी रचना की। कवि ने इसके लेखन उद्देश्य को भी स्पष्ट कर दिया है—

तिन कवि केसवदास सों कीन्हों धर्म-सनेहु ।
सब सुखदे करि यों कह्यो, 'रसिकप्रिया' करि देहु ॥10॥
अति रति, गति-मति एक करि, बिविध बिबेक बिलास ।
रसिकन कों 'रसिकप्रिया' कीनी केसवदास ॥12॥

काव्य-शास्त्र में 'रसिक' शब्द सहृदय आस्वादक के लिए प्रयुक्त होता है पर यहाँ केशवदास ने उसके धात्वर्थ पर भी ध्यान दिया है। रस और रसमयता का आधार लेकर ही **'रसिकप्रिया'** में कवि ने नवरसों की अवतारणा की है। 'नायक है शृंगार' के अनुसार रसराज होने के कारण स्वभावतः शृंगार का स्थान प्रथम रक्खा गया है तथा उसका विस्तार भी सर्वाधिक है पर अन्य रसों का भी सम्यक् निरूपण किया गया है। कवि ने गणेश वंदना के बाद श्रीकृष्ण वंदना का जो छप्पय रचा है, उसमें कृष्ण के रसिक रूप को इसीलिए केवल शृंगारमय न कह कर 'नवरसमय' बताया है, जो एक विलक्षण धारणा है। छंद इस प्रकार है—

श्री वृषभानु-कुमारि-हेत संृगार-रूप भय।
वास हास रस हरे, मातु-बंधन करुनामय।
केसी प्रति अति रौद्र, वीर मारो वत्सासुर।
भय दावानल-पान, पियो वीभत्स बकी-उर।
अति अद्भुत बंचि बिरंचि-मति, सांत संततै सोच चित।
कहि केसव सेवहु रसिक जन, नवरसमय ब्रजराज नित ॥2॥

कवि ने अनेक लौकिक-अलौकिक कृष्ण लीलाओं से रसात्मक प्रसंग खोज कर कृष्ण के स्वरूप को अनुकूल-प्रतिकूल सभी प्रकार के रसों से विभूषित कर दिया

हैं। प्रारम्भिक दोहों में 'बिनु वानी न रसाल' तथा 'कीजै सरस कवित्त' कह कर केशवदास ने यह निर्दिष्ट कर दिया है कि वे अलंकारवाद की ओर झुकने से पहले रस की ओर प्रवृत्त हुए और उनकी काव्यशास्त्रीय धारणा में रस भी समाहित है। उसका सापेक्षिक स्थान क्या माना जाय, इस सम्बन्ध में उनकी परवर्ती विचार-धारा कुछ भिन्न दिखायी देती है, जिसकी चर्चा **'कविप्रिया'** के प्रसंग में की जायेगी। नायक-लक्षण लिखने से पूर्व उन्होंने शृंगार रस के संयोग और वियोग नामक दो प्रसिद्ध भेदों के 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' संज्ञक दो अप्रसिद्ध उपभेद भी निरूपित किये हैं—

सुभ संजोग वियोग पुनि द्वै सिंगार की जाति।
पुनि प्रच्छन्न प्रकास करि, दोऊ द्वै द्वै भाँति ।।18।।

प्रथम 'प्रभाव' से 'एकादश प्रभाव' तक शृंगार-रस से सम्बद्ध सभी पक्षों को कवि ने इसी प्रकार 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' के उभयात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। शेष रसों के निरूपण में यह भेद उपभेद प्रदर्शित नहीं हैं। लाला भगवानदीन ने **'केशव पंचरत्न'** में इनके विषय में यह धारणा व्यक्त की थी कि ये केवल केशव के ही ईजाद थे और केशव तक ही रहे, आगे न चल सके। पर आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय तथा पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने क्रमशः **'शृंगारदर्पण'** (अकबरसाहि) और **'शृंगारप्रकाश'** (भोज) तथा **'शृंगारतिलक'** (रुद्रभट्ट) में इनका उल्लेख निर्दिष्ट करके यह सिद्ध कर दिया कि केशव ने उक्त ग्रन्थों से इनकी प्रेरणा ग्रहण की है और यह उद्भावना उनकी मौलिक नहीं कही जा सकती। **'शृंगारतिलक'** की तुलना में उन्होंने यत्किंचित् नूतनता लाने का प्रयास किया है, यह अवश्य माना गया है।

डॉ० किशोरीलाल ने **'रीति कवियों की मौलिक देन'** का आकलन करते हुए इस पर विचार किया है (पृ० 118)। उन्होंने यह भी निर्दिष्ट किया है कि आचार्य केशवदास ने अपने **'रसिकप्रिया'** ग्रन्थ में सर्वप्रथम शृंगार रस के आश्रय और आलम्बन के रूप में कृष्ण और राधा को मान्यता दी परन्तु विद्यापति की **'पदावली'**, सूर की **'साहित्यलहरी'** और नंददास की **'रसमंजरी'** में यह बात पहले ही घटित हो चुकी थी। जयदेव के **'गीतगोविन्द'** में इस परम्परा के बीज मिलते हैं क्योंकि उसमें भी शृंगार रस और नायिका भेद की चेतना समाविष्ट है। केशव की **'रसिकप्रिया'** वस्तुतः इसी परम्परा का मूर्त रूप है। उसमें काम-शास्त्र, भक्ति-शास्त्र और काव्य-शास्त्र तीन धाराओं का मेल स्पष्ट दिखायी देता है, जो जयदेव के द्वारा पहले ही घटित किया जा चुका था।

केशव ने विविध रसों के रंगों का निर्देश कदाचित् नाट्यशास्त्र की देव-कल्पना से प्रेरित होकर किया है। इसे अंशतः उनकी निजी उद्भावना भी माना जा सकता है। कुछ लक्षणों और उदाहरणों में पर्याप्त नवीनता लक्षित होती है। नायक-भेद और वृत्ति-वर्णन केशवदास ने भरत के नाट्यशास्त्र की प्रेरणा से

प्रस्तुत किये हैं। यह क्रमश: दूसरे और पन्द्रहवें प्रभाव में समाविष्ट हैं। शठ नायक का लक्षण किसी नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ में वैसा नहीं मिलता, जैसा केशव ने दिया है। 'कलहांतरिता' नायिका के लिए केशव ने 'अभिमंधिता' नाम का प्रयोग किया है, जिसका स्रोत अभी तक अज्ञात है। खण्डिता नायिका का लक्षण भी औरों के दिए लक्षण से भिन्न है। 'सामान्या' या 'गणिका' नायिका, जिसका अन्य प्राचीन शास्त्रकारों ने निरूपण किया है, केशव की **'रसिकप्रिया'** में अनुपस्थित है। इससे उनकी नैतिक दृष्टि का बोध होता है। सप्तम प्रभाव में अगम्या नायिकाओं का वर्णन भी इसी का द्योतक है। कुछ अन्य नायिकाओं के लक्षण केशव ने अपने जीवनानुभव तथा विवेक के आधार पर स्वतन्त्र रूप में प्रस्तुत किये है। केशव द्वारा वर्णित 'बोधक हाव' पूर्व परम्परा से समर्थित न होते हुए भी परवर्ती अनेक कवियों द्वारा चर्चित हुआ। हास्य रस के भेदों में 'परिहास' की मौलिकता भी उल्लेखनीय है।

केशवदास ने **'रसिकप्रिया'** के चौदहवें प्रभाव में जिन आठ शृंगारेतर रसों का निरूपण किया है, उनमें 'नवरसमय ब्रजराज' की धारणा के अनुरूप सर्वत्र कृष्ण को नायक और राधिका को नायिका बनाकर विविध और विचित्र स्थितियों की कल्पना की गयी है। भोज के **'शृंगार-प्रकाश'** में शृंगार रस की जो नयी धारणा मूल रस के रूप में बनायी गयी, वही केशव की प्रेरक रही होगी। परन्तु दोनों में पर्याप्त अन्तर है। भोज नौ की जगह दस रस मानते हैं और सबका मूल शृंगार को बताते हैं, जो अहंकार रूप है। केशव इससे भिन्न आधार लेकर सब रसों को कृष्ण चरित पर ही घटित करते हैं। सोलहवें प्रभाव में अनरस-वर्णन के अन्तर्गत अनेक ऐसे रस-रूप गिनाये गये हैं, जो अवांछित और कवियों के लिए वर्ज्य हैं—

प्रत्यनीक नीरस विरस 'केशव' दु:संधान।
पात्रादुष्ट कवित्त बहु, करहिं न सुकवि बखान।।

इनमें असाधारण और विसंगतिपूर्ण भाव स्थितियों के कारण रसास्वादन में बाधा उत्पन्न होती है अत: इनकी समग्र संज्ञा **'अनरस'** दी गयी है जब कि वर्णन-क्रम में इन्हें 'रस' ही कहा गया है। वस्तुत: यह एक सजग कवि के लिए कष्ट साध्य कार्य है कि वह अनुकूल के साथ प्रतिकूल मनोभावों को भी काव्यबद्ध करे। कवि और शास्त्रकार की लिप्त और तटस्थ दोनों विरोधी स्थितियों के बीच संतुलन स्थापित करते हुए भाषा में एक सार्थक एवं प्रेरक रचना प्रस्तुत कर देना निश्चय ही गौरव की बात है।

## नखशिख एवं शिखनख

'**शिखनख**' अथवा '**नखशिख**' कथासूत्र-विरहित मानव-देह के सौन्दर्य-वर्णन से सम्बद्ध मुक्तकों का अंगानुक्रमात्मक संग्रह है। यह काव्य-रूप लोकानुवर्ती नहीं है यद्यपि लोक-गीतों में भी रूप-वर्णन की विधि कहीं-कहीं इतनी प्रभावशाली मिलती है कि शास्त्रीय पद्धति भी फीकी लगने लगती है। केशव-ग्रंथावली में पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में केवल 'शिखनख' को मान्यता दी है। साथ ही, 'नखशिख' को भी, '**कविप्रिया**' के 15वें अध्याय के प्रारम्भ में समाहित मानकर प्रकाशित कर दिया है। इसका विस्तार 'अथ नखशिख वर्णन' से होकर 'इतिनखशिख' तक 94 छन्दों में परिव्याप्त है। केशवदास ने इसमें अनुक्रमित अंगवर्णन के दोनों रूपों के लक्षण इस प्रकार दिये हैं—

नख ते सिख लौं बरनिये देवी दीपति देखि।
सिख ते नख लौं मानुषी 'केसवदास' विसेखि ।। 2 ।।
जग के देवी-देव के श्री हरिदेव बखानि।
तिन हरि की श्री राधिका इष्टदेवता जानि ।। 3 ।।
भूषित तिनके भूषननि त्रिभुवनपति के अंग ।
तिनके 'केसवदास' कवि बसनतु है प्रति अंग ।। 4 ।।

जब रूप-वर्णन का क्रम नख से आरम्भ होकर शिख तक जाता है तो माना जाता है कि कवि ने ऐसा देव-भाव से किया है। इसके विपरीत जब शिख से नख तक की छवि वर्णित की जाय तो मानुषी भाव माना जाता है। केशव ने दोनों पद्धतियों तथा दोनों भावों का अनुसरण प्रायः एक साथ किया है। नखशिख—जिसमें मानुषी का वर्णन अपेक्षित है, उसके अन्तर्गत 'कौने है सँवारी वृषभानु की कुमारी यह, (छन्द 22) तथा 'एरी वृषभानु की कुमारी' (छन्द 25) जैसे अनेक अंश देव-परक वर्णन का आभास देते हैं। '**शिखनख**' के अन्तर्गत तो उनका होना स्वाभाविक ही है पर केशवदास ने उसमें अधिकतर 'भामिनी', 'कामिनी', 'तरुनी', 'चन्दवदनी' और 'सुवाम' जैसे मानुषी परक सामान्य शब्दों का ही प्रयोग किया है। 'कुँवरि राधिका' का स्पष्ट उल्लेख तो अपवाद रूप में हुआ है। कहा जा सकता है कि उन्होंने नायिकापरक सामान्य शब्दों का प्रयोग भी राधा-भाव से किया है। पर ऐसा यदि एक जगह माना जायेगा तो दूसरी जगह भी वैसा ही मानना होगा। अतएव यही कहना उचित है कि 'नखशिख' और 'शिखनख' का विभेद उन्होंने लक्षण में तो निर्दिष्ट किया है पर स्वरचित उदाहरणों में उसका सर्वत्र निर्वाह नहीं किया है। अंगों का वर्णन केशव ने प्रायः प्रसिद्ध उपमानों द्वारा आभूषणों सहित किया है। यह उनकी विशेषता है। आभूषणों को 'नखशिख' में इतना महत्त्व देना केशव की अलंकार-प्रियता ही नहीं, अलंकारवादी काव्य-दृष्टि का भी परिचायक है। जावक (महावर), नूपुर, नकमोती, बेंदा, अंजन, खुटिला

इत्यादि के साथ चरण, अंगुली, उरु, नितम्ब, कुच, भुज, कपोल, लोचन, लिलार, मुख, अलक, वेणी, अंगवास और बसन का भी वर्णन हुआ है। 'शिखनख' में आभूषणों का वर्णन समाविष्ट नहीं है और न समग्र रूप-वर्णन ही मिलता है। अंगवास आदि के वर्णन भी नहीं हैं। दूसरी ओर 'पाटी' 'तारे' एवं 'कुचाग्र' कुचात के वर्णन हैं, जो 'नखशिख' में नहीं हैं।

कवि ने एक छन्द में समस्त भूषण-वर्णन और दूसरी में गति-वर्णन के अनन्तर सम्पूर्ण मूर्ति-वर्णन भी किया है। जिससे ज्ञात होता है कि उसकी कल्पना में अंग आभूषण आदि रूप के समग्र-बोध से विच्छिन्न नहीं है और न 'मूर्ति' कहने से उसका आशय किसी गति-रहित व्यक्तित्व का है।

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने **'सहजरामचन्द्रिका'** नामक टीका के प्रमाण से 'नखशिख' को तो **'कविप्रिया'** के पन्द्रहवें प्रमाण के आरम्भ में समाहित कर लिया है पर 'शिखनख' को एक स्वतन्त्र रचना मानकर खण्ड 2 के अन्त में प्रकाशित कर दिया है। इसका उन्होंने कोई सन्तोषजनक कारण नहीं बताया है क्योंकि वे **'कविप्रिया'** में 'नखशिख' और 'शिखनख' दोनों के समावेश की तीसरी धारा को भी स्वीकार करते हैं। यथा—

"कविप्रिया के तीन प्रकार के प्रवाह हैं। एक, जिसमें 'नखशिख' और 'शिख-नख' दोनों नहीं है। दूसरा, जिसमें 'नखशिख' है पर 'शिखनख' नहीं और तीसरा जिसमें दोनों हैं।" (केशव-ग्रंथावली खण्ड-3, पृ० 7)

दीनजी द्वारा सम्पादित **'कविप्रिया'** में 'नखशिख' नहीं मिलता न चौदहवें के अन्त में और न पन्द्रहवें के प्रारम्भ में। मेरी दृष्टि से **'नखशिख'** को भी **'शिखनख'** की तरह स्वतन्त्र रचना मानना उचित है। दोनों के आदि-अन्त का रूप देखने से यही धारणा बनती है।

**नखशिख**—1. अथ नखशिख बर्णन—(दोहा)

2. इहि विधि बरनहु सकल कवि अविरल छबि अंग अंग।
कही जथा मति जीव जड़ 'केसव' पाइ प्रसंग ॥ 94 ॥

इति नखशिख

**शिखनख**—1. एक स्वरचित संस्कृत श्लोक के अनन्तर 'अथ केश-वर्णन' से आरम्भ

2. इति श्रीकेशवपंडित विरचित शिखनख वर्णन समाप्तम्।

**'नखशिख'** के अन्त में प्रसंग पाकर वर्णन करने की बात अवश्य यह सूचित करती है कि केशव ने इसकी रचना किसी विशेष सन्दर्भ में की। किन्तु यह सन्दर्भ **'कविप्रिया'** की अन्तरंग आवश्यकता से प्रेरित प्रतीत नहीं होता। कवि की प्रिया 'राय प्रवीन' से प्रेरित हो सकता है। चौदहवाँ प्रभाव 'उपमालंकार वर्णन' करके समाप्त हो जाता है और पन्द्रहवाँ यमक-वर्णन से आरम्भ होता है। नख-

शिख-वर्णन को पूरी तरह न उपमा में समेटा जा सकता है और न यमक में। अतएव कहना होगा कि इसकी स्थिति कविप्रिया में प्रसंग-सापेक्ष्य नहीं है।

**'शिखनख'** में अंग-प्रत्यंग वर्णन के केवल उदाहरण ही समाविष्ट हैं, लक्षण नहीं। प्रारम्भ बिना किसी भूमिका के हुआ है और अन्त में समग्र रूप-वर्णन भी नहीं है। प्रारम्भिक संस्कृत श्लोक प्रत्यक्षत: विषय से सीधे सम्बद्ध नहीं हैं। देव-वाणी संस्कृत की ज्ञान-गरिमा के साथ 'भाषा-रस' की लोलुपता का उसमें पहली बार स्वीकार किया गया है। यह अवश्य महत्त्वपूर्ण है, अन्यथा वे उसे हेय ही मानते रहे। लगता यही है कि संस्कृत की तुलना में भाषा की विशेषता प्रमाणित करने के व्यापक उपक्रम में इस विषय का चयन करके केशव ने अपने वर्णन-कौशल और काव्य-परम्परा के विशेष ज्ञान का प्रदर्शन सौन्दर्यप्रियता के साथ किया है। यदि इसकी प्रेरणा उन्हें किसी संस्कृत-ग्रन्थ से मिली होती तो वे उसका उल्लेख अवश्य करते।

## बारहमासा

बारहमासा भी **'नखशिख'** तथा **'शिखनख** की तरह **'कविप्रिया'** के उन अंशों में हैं, जो पृथक् रूप से भी मिलते हैं और कुछ लोग उन्हें **'कविप्रिया'** का अंग नहीं मानते। यह रूप लोक-परम्परा से ग्रहीत है क्योंकि ऐसे अनेक लोक-गीत मिलते हैं, जिनमें बारह महीनों के क्रम से ऋतु-वर्णन एवं संयोग-वियोग वर्णन किया गया है। कालिदास के **'ऋतुसंहार'** से **'षड्ऋतु वर्णन'** की जो परम्परा चली, वह भी कालान्तर में बारहमासा से संयुक्त हो गयी। जायसी के **'पद्मा-वत'** और सेनापति के **'कवित्तरत्नाकर'** में दोनों का निर्वाह हुआ है। पर जायसी ने बारहमासा में विरह-वर्णन को प्रधानता दी है। 'द्वादसमास बिरह कै कथा' कहने में उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा का असाधारण उत्कर्ष प्रदर्शित किया है। केशवदास का 'बारहमासा' 'कविप्रिया' के दसवें प्रभाव में 'शिक्षाक्षेप' के उदाहरण स्वरूप छंद 23 से 35 तक वर्णित है। 'प्रभाव' का अन्त उसी से होता है। कवि ने इसमें लक्षणा के लिए एक दोहा अवश्य दिया है, पर मास-वर्णन केवल छप्पय छन्द में किया गया है। विरह के स्थान पर केशव ने प्रकृति-निरूपण पर बल दिया है। छन्दों के अन्त में, कहीं नायिका नायक को परदेस जाने से रोकती हुई प्रदर्शित है और कहीं विरहिणी के रूप में काम-बाण-विद्ध चित्रित की गयी है। विरह अपवाद रूप में ही है क्योंकि नायिका प्रत्येक मास के प्राकृतिक वैभव का निरूपण करके अन्त में घर से बाहर जाने के लिए मना ही करती है। मध्यकालीन चित्र-कारों ने इसकी प्रेरणा से बारहमासा-चित्र-श्रृंखला का निर्माण कर डाला, जो बहुत लोकप्रिय हुई। जिस रूप में यह कविप्रिया में समाहित है, उसको देखते हुए इसे स्वतन्त्र रचना मानना सम्भव नहीं है। डॉ. किरणचन्द्र शर्मा के अनु-

सार "बारहमासा केशव का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। यह कविप्रिया का अंश मात्र है।" (**केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व**, पृ० 95)

यह उचित ही है कि पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इसे **'केशव-ग्रन्थावली'** में अलग स्थान नहीं दिया। पर इसकी स्थिति **'नखशिख'** और **'शिखनख'** से इस अर्थ में भिन्न कही जायेगी कि इसको **'कविप्रिया'** में अलग से नहीं जोड़ा गया है। इसका भी कोई प्रमाण नहीं है कि इसके बिना **'कविप्रिया'** की कोई प्रति उपलब्ध हुई हो जबकि पूर्वोक्त दोनों रचनाओं के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। डॉ. विजयपाल सिंह ने केशव की सर्वमान्य प्रामाणिक रचनाओं की सूची में इसे चौथे स्थान पर रखा है और रचनाकाल सं० 1957 निर्दिष्ट किया है जबकि **'कविप्रिया'** को **'रामचन्द्रिका'** के बाद स्थान देकर उसी की तरह सं० 1958 में विरचित बताया गया है। इससे **'बारहमासा'** और **'कविप्रिया'** का पार्थक्य सिद्ध होता है, जो विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। सम्भव है, **'बारहमासा'** के पद्य **'कवि-प्रिया'** की रचना पूर्ण होने से कुछ पहले रचे गये हो पर इससे 'बारहमासा' को उससे पृथक् स्वतन्त्र रचना मानना सम्भव नहीं है। छन्द-विधान अवश्य उसे इकाई के रूप में अलग करता है लेकिन केशव जैसे छन्द-वैविध्य-प्रिय कवि के सन्दर्भ में पर्याप्त कारण नहीं माना जा सकता।

## रामचन्द्रिका

केशव की रचनाओं में यह सबसे प्रसिद्ध रचना है। इसमें कवि ने रामकथा का क्रमबद्ध वर्णन किया है, किन्तु उसे सुसम्बद्ध बनाकर नहीं प्रस्तुत किया। प्रमुख प्रसंगों को चुनकर और उन्हें विभिन्न छन्दों में क्रम देकर छन्दबद्ध कर दिया गया है। कुछ अंश निश्चय ही उत्कृष्ट हैं। लोकप्रिय होकर वे रामचरित मानस की रामलीला के पाठ में स्वीकृत हो गये किन्तु समग्रत: **'रामचन्द्रिका'** **'रामचरित मानस'** की तरह न तो लोकग्राही हो सकी और न प्रबन्ध-काव्य का प्रतीकमान प्रस्तुत कर सकी। आलोचक कृष्णचन्द्र शुक्ल के अनुसार—"इसका स्वरूप तो प्रबन्ध काव्य का-सा है परन्तु कथा का प्रवाह प्रबन्ध काव्य के अनुरूप नहीं हुआ। अलंकारों को अनावश्यक महत्त्व दिया गया है। अत: गम्भीर तथा मार्मिक भाव-व्यंजना वैसी नहीं हो पायी। चरित्र-चित्रण इत्यादि में भी त्रुटियाँ रह गयी हैं। केशव दरबारी कवि थे, दरबारी रीति-नीति का उनको अच्छा अनुभव था इसी के फलस्वरूप राजसी ठाठ-बाट, राजनीतिक कूटनीति इत्यादि के वर्णन से ठीक उतरे हैं। दरबारियों का संभाषण कला पर भी स्वाभाविकत: अच्छा ही अधिकार रहता है इसी कारण रामचन्द्रिका के संवादों का निर्माण अच्छा हुआ है। संवादों के प्रसंग में पात्रों की परस्पर मर्यादा का भी ध्यान रखा गया है। इनके से संवाद कोई प्राचीन कवि नहीं लिख सकता। बुन्देलखण्ड,

रुहेलखण्ड इत्यादि प्रदेशों में इनके ग्रन्थ का अब भी बड़ा प्रचार है। प्राचीन वयोवृद्ध साहित्यिक इस ग्रन्थ पर धार्मिक श्रद्धा रखते हैं ।"

**(केशव की काव्य कला, पृ० 8, 9)**

उपर्युक्त कथन रामचन्द्रिका के विषय में जो धारणा व्यक्त करता है, वह बहुत गहरी न होकर सामान्य ही दिखायी देती है । केशव ने इस ग्रन्थ की रचना किन परिस्थितियों में किस प्रेरणा से की, इसका परिचय स्वयं कवि ने ही दे दिया है :—

वालमीक मुनि स्वप्न में दीनों दर्शन चारु ।
केशव यह तिनसों कहों क्यों पाऊँ सुख सारु ।।

इस दोहे से स्पष्ट है कि केशव ने **रामचंद्रिका** की रचना मुख्यतया '**वाल्मीकि रामायण**' की प्रेरणा से की । स्वप्न का यह वृत्तान्त सही भी हो सकता है और लाक्षणिक भी । वाल्मीकि ने रामनाम का महत्त्व बताते हुए जगत्वन्द्य रामचन्द्र के वेदसम्मत एवं महादेव और ब्रह्मा द्वारा सेवित ऐसे दैवी पुरुष के चरित्र को, जिसे सरस्वती और शेषनाग भी वर्णित नहीं कर पाते, उसे कवि के रूप में केशवदास वर्णित करें, तो कल्याण होगा चाहे वह भला बने चाहे बुरा । बिना रामदेव के चरित का गान किए देवलोक की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

भलो बुरो न तू गुनै बृथा कथा कहै सुनै न ।
रामदेव गाई है न देव लोक पाई है ।। (पृ० सं० 16)

इस प्रेरणा के फलस्वरूप केशवदास ने परमब्रह्म श्री राम को 'अवतारी और अवतार गुनीं'—दोनों रूपों में अपना इष्टदेव बना लिया । यथा—

मुनिपत यह उपदेश दय, जबहिं भये अदृष्ट ।
केशवदास तहीं करो रामचन्द्र जी इष्ट ।। (पृ० सं० 18)

रामचरित के अनेक छन्दों में वर्णन का संकल्प उन्होंने जिस प्रकार किया और रचना को कौन-सा नाम दिया, यह निम्नलिखित दोहे से स्पष्ट है:—

जागत जाकी ज्याति जग, एक रूप सतछन्द ।
रामचन्द्र की चन्द्रिका वरणत हूं बहु छन्द ।। (पृ० सं० 21)

इस दोहे के आधार पर कहा जा सकता है कि कवि ने अपनी रचना का वास्तविक नाम '**रामचन्द्र चन्द्रिका**' दिया है, जो प्रत्येक प्रकाश की पुष्पिका से भी सम्बन्धित है और रूपकबद्ध भी । **रामचन्द्रिका** इसी अभिधान का संक्षिप्त रूप है, जो बाद में प्रचलित हो गया । बहु छन्द की कल्पना अवश्य नई वस्तु है क्योंकि महाकाव्य और प्रबन्ध-काव्य के अन्य रूपों में संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में केशव ने जैसी छन्द योजना की है, वह प्राप्त नहीं होती । यह उनका सर्वाधिक मौलिक प्रयास सिद्ध होता है किन्तु यही रामचन्द्रिका के महाकाव्यत्व का पौध भी प्रतीत होता है ।

'रामचन्द्रिका' की रचना 39 प्रकाशों में पूर्ण हुई है। दीन जी ने उसे 'पूर्वार्द्ध' और 'उत्तरार्ध' में विभाजित मानकर उसमें क्रमश: 20 और 19 प्रकाशों को स्थान दिया है। मूल ग्रन्थ का प्रकाशन ग्रन्थावली में जिस रूप में हुआ है, उससे इस विभाजन की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती और न कोई कथात्मक आधार ही दृष्टिगत होता है। पाण्डुलिपि और केशवदास के उल्लेख के आधार पर इस ग्रन्थ का वास्तविक नाम **'रामचन्द्र चन्द्रिका'** ही सिद्ध होता है पर संक्षिप्त नाम **'रामचन्द्रिका'** भी अब इतना प्रचलित हो गया है कि उसे सर्वथा विस्मृत करना सम्भव नहीं है। दीन जी के संस्करण में कुछ हस्तलेखों के आधार पर कथा सूचक दोहों को भी मूल-रचना में स्थान दिया गया है पर मिश्रजी ने ग्रन्थावली के अन्तर्गत परिशिष्ट 1 में इन्हें 'कथासूची' के रूप में अलग छाप दिया है। परिशिष्ट 2 में उन्होंने रामचन्द्रिका में प्रयुक्त 132 छन्दों की लक्षण-युक्त पूरी सूची प्रकाशित कर दी है। **'छन्दमाला'** में केशव ने 84 छन्द ही दिये हैं अत: 'रामचन्द्रिका' का वैशिष्ट्य छन्द-वैविध्य की दृष्टि से स्वत: सिद्ध हो जाता है।

विषय-वस्तु के सन्दर्भ में यद्यपि केशव ने राम-कथा के अंश ग्रहण की प्रवृत्ति आद्यन्त अपनायी है, तथापि सेनापति की तरह 'कथा-क्रम' को बहुत महत्त्व न देते हुए 'काहू-काहू ठौर' के कुछ कवित्त लिखने जैसी कोई स्पष्ट घोषणा नहीं की है।

रामचन्द्रिका में जगह-जगह कथा-सूत्र छिन्न अवश्य होता है पर कथा-क्रम टूटता नहीं। उसका सर्वत्र निर्वाह किया गया है। जिन अंशों को लिया गया है उनका परिचय केशव ने स्वयं दे दिया है पर जो अंश छोड़ दिये गये हैं, उनमें से प्रमुख हैं—राम-जन्म कथा तथा वय-विकास, पुष्पवाटिका प्रसंग, केवट प्रसंग, चित्रकूट में सभा-समायोजन, जटायु-रावण-युद्ध, सुषेण-समागम।

इन्हें रामकथा के केशव द्वारा अग्रहीत अंश कहा जा सकता हैं। **वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण** तथा **रामचरितमानस** आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों से परिचित लोकमानस इन कथाओं के बिना राम-कथा का पूरी भावानुभूति नहीं करता। पर केशव ने इन्हें क्यों छोड़ दिया, यह उनके दृष्टिकोण को समझ लेने के बाद समझना कठिन नहीं रहता। प्रबन्धात्मक विधि से आद्यन्त सुसम्बन्द्ध प्रवाहमय कथा कहना उनका उद्देश्य ही नहीं था। वस्तुत: वे वर्णक-बोध से प्रेरित थे।

जो अंश उन्हें अपने अनुकूल और वर्णन-प्रधान दिखायी दिये, वे ही उनके द्वारा चुनकर एक माला के रूप में संग्रथित कर दिये गये, जिसमें प्रसंग-पुष्पों का स्पष्ट अलगाव देखा जा सकता है। **'रामचन्द्रिका'** प्रवाहमयी धारा न होकर जलाशयों, द्वीपों और अन्तरीपों की अलंकृत सरणि प्रतीत होती है।

## रामकथा के ग्रहीत अंश

विश्वामित्र का आगमन और असुर-नाश के लिए राम-लक्ष्मण का ग्रहण, यज्ञ-रक्षा और अहिल्या-उद्धार के अनन्तर स्वयंवर के अवसर पर मिथिला-प्रयाण, रावण-वाणासुर-सम्वाद, धनुर्भंग, जयमाल, परशुराम-आगमन, दशरथ का पुत्र-वधुओं सहित अवध-प्रवेश, राम-वन-गमन, दशरथ-निधन, भरत का चित्रकूट से लौटकर नन्दीग्राम-निवास, राम का पंचवटी-निवास, शूर्पणखा-विरूपण, खर-दूषण-वध, बालि-वध, वर्षा-शरद वर्णन, समुद्र-लंघन, सीतान्वेषण, सीता-त्रास, मेघनाद द्वारा हनुमान-बन्धन, लंका-दहन, सेतु-निर्माण, रावण की चिन्ता, अंगद संवाद, लंकावरोध, शत्रु-सेना-वर्णन, युद्ध, लक्ष्मण-शक्ति प्रकरण, कुम्भकर्ण-मेघनाद-वध, मकराक्ष-युद्ध, दूत-विधान, रावण का गूढ़स्थल वास, अंतःपुर एवं यज्ञशाला-विध्वंस, मन्दोदरी-कर्षण, रावण-वध, सीता-मिलन, ब्रह्मस्तुति, प्रयाग में भारद्वाज से भेंट करते हुए दान-विधान, भरत-मिलन, कार्य-यश-गान, अवधपुरी-प्रवेश, पुरवासियों की प्रीति, माताओं से भेंट, ऋषिजन-आगमन, राज्यश्री-निन्दा और राम में विरक्ति का संचार, विश्वामित्र वशिष्ठ से प्रबोध-प्राप्ति, ऋषियों से संवाद, तत्त्व-ज्ञान, वशिष्ठ द्वारा रामनाम के महत्त्व का निरूपण, राम-राज्याभिषेक, ब्रह्मास्तुति, राम-राज वर्णन, चौगान क्रीड़ा, दीप-माला, शुक-विनती आदि प्रसंग; रंग-महल वर्णन, सुख-शयन-वर्णन, सारिकाओं द्वारा जागरण, भोजन वर्णन, वसन्त वर्णन, शुक द्वारा सीता की दासियों का वर्णन, पुनः बाग-विहार, उपवन वर्णन, जलक्रीड़ा-वर्णन, ब्रह्म-विनय, शंबूक-वध, श्वान-कथा, सनाढ्य द्विज आगमन, लवनासुर-संहार, अश्वमेध-यज्ञ लव-शत्रुघ्न सम्मोजन एवं संग्राम, लक्ष्मण मोहन (मूर्छा), राम-भरत-आगमन, लव द्वारा कटुवचन, भरत पर भी मोहन-बाण का प्रयोग, अंगद-युद्ध, राम का कुश-लव आश्रम में प्रवेश, सीता-राम-मिलन, पुत्रों को राज्य-प्रदान आदि प्रसंग **'रामचन्द्रिका'** में यथा-क्रम वर्णित हैं।

केशवदास ने राम-कथा को संघर्ष के बिन्दु से उठाकर उसके वर्णनीय, श्रवणीय एवं स्मरणीय विशेष प्रसंगों को अपनी काव्य-कला से संदीप्त कर, भक्ति और राज-वैभव दोनों पक्षों पर प्रायः समान बल देते हुए विविध छन्दों में प्रस्तुत किया है। कुछ प्रसंग असाधारण रूप से समृद्ध और सशक्त हैं पर कुछ शिथिल और भरती की सामग्री से युक्त भी। कुछ प्रसंग नवीनतासूचक हैं और कुछ पाण्डित्य-परक तथा कुछ पौराणिक मानसिकता की उपज। **कथा-ग्रन्थन** में वाल्मीकि आदि प्रसिद्ध रामायणों तथा भागवत आदि पुराणों के अतिरिक्त केशवदास ने संस्कृत के साहित्यिक ग्रन्थों से भी पर्याप्त सहायता ली है, जिनमें **'हनुमन्नाटक'** तथा **'प्रसन्नराघव'** प्रमुख हैं। सवादों की नाटकीयता और उक्ति-वैचित्र्य पर इन ग्रन्थों का विशेष प्रभाव पड़ा है। उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की

शृंखलाबद्धता की तुलना कुछ समीक्षकों ने **'कादम्बरी'** से भी की है परन्तु यह प्रवृत्ति केशव में प्रभावगत न होकर स्वभावगत प्रतीत होती है।

**रामचन्द्रिका** के तथाकथित पूर्वार्द्ध में सरयू, उपवन, सर्वोदय, पंचवटी, दण्डक-वन, गोदावरी, दशरथ के हाथी महल, राज-सभा, द्वार और वर्षा-शरद तथा त्रिवेणी आदि का प्राकृतिक सौन्दर्य एवं पौराणिक महत्त्व वर्णित है। साथ ही, दशरथ के गजराज, राज-सभा, अयोध्या की नगर-शोभा, मिथला का वैभव तथा स्वयंवर की महिमा का भी सफल निरूपण किया गया है। अंगद द्वारा चित्र-कन्याओं में विभ्रम तथा मन्दोदरी-केश-कर्षण एवं अनेक उत्प्रेक्षाओं द्वारा उसके उघरे वक्ष का असाधारण वर्णन है। सीता की अग्निपरीक्षा में भी एक से एक से एक ललित उत्प्रेक्षाओं की शृंखला दर्शनीय है। वस्तुतः पूर्वार्द्ध में वस्तु वैचित्र्य से अलंकार वैचित्र्य अधिक दिखायी देता है जबकि उत्तरार्ध में अलंकार-वैचित्र्य की अपेक्षा वस्तु-वैचित्र्य की प्रधानता प्रतीत होती है। केशव राम-राज्य की महिमा तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने राम-महल, शयनागार, वसन-शाला, जल-शाला, गन्ध-शाला, मेवा-शाला, यन्त्र-शाला, कृत्रिम-सरिता, पर्वत एवं जलाशय आदि का प्रसिद्ध कथावस्तु से अलग वर्णन किया है।

सारी रचना को देखकर यही लगता है कि **रामचन्द्रिका** के माध्यम से कवि अपने अनुभव में आये ओड़छा-राज्य के वैभव, राज-काज, सेना-प्रयाण, आमोद-प्रमोद के साधनों तथा राजसी वातावरण का सटीक चित्रण करना चाहता है और 'राम-कथा' 'रामशाह' और उनके वंश की कीर्ति-कथा बनाकर नये रूप में सहृदयों के आगे प्रस्तुत की गयी है। ओरछा राज्य की राम-भक्ति-परम्परा और राम मन्दिर, अयोध्या की उपासना-पद्धति भी इसमें सहायक हुई है। कवि ने जो जीवन दृष्टि अपनायी है, उसमें लौकिक और पारलौकिक का अलगाव या विरोध कहीं लक्षित नहीं होता, केवल अन्त में ज्ञान, त्याग और भक्ति की वरीयता अवश्य सिद्ध होती है, जो भारतीय संस्कृति की केन्द्रीय विशेषता रही है। समापन के छन्दों में फलश्रुति इस प्रकार निरूपित है।

रामचन्द्र चरित्र को जे सुनै सदा चित लाय।<br>
ताहि पुत्र कलत्र सम्पति देत श्री रघुराय।<br>
जज्ञ-दान अनेक तीरथ न्हान को फल होइ।<br>
नारि का नर, विप्र, क्षत्रिय, वैस्य सूद्र जु कोइ ।।38।।<br>
असेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाइ।<br>
विदेहराज ज्यों सदेह भक्तराम को कहाइ।<br>
लहैं सुभक्ति लोक लोक अन्त मुक्ति होहि ताहि।<br>
पढ़ै कहै सुनै गुनै जु रामचन्द्रचन्द्रिकाहि ।।39।।

उन्तालीसवें प्रकाश को उन्तालीस छन्दों में ही पूरा करना संख्यागत आकस्मिक संगति भी हो सकती है और पूर्णता का अभीष्ट संकल्प भी।

केशव के विशेषज्ञों द्वारा **'रामचन्द्रिका'** तथा केशवकृत अन्य काव्य ग्रन्थों के बीच सूक्ष्म अन्तर्सम्बन्ध भी निर्दिष्ट किया गया है। **'कविप्रिया'** के छठे प्रभाव में वर्ण्यालंकार और सातवें-आठवें में 'भूमि-भूषण' तथा 'राजश्री-भूषण' का वर्णन है। **'रामचन्द्रिका'** में इनका पर्याप्त समावेश है। इसी तरह 'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध और **'वीरसिंहदेव चरित'** के उत्तरार्द्ध में बहुत साम्य दिखायी देता है। यही नहीं, दोनों ग्रन्थों में बहुत से छन्द समान रूप से मिलते हैं, जो दोनों को एक ही कवि की और प्रायः एक ही प्रवृत्ति की रचना सिद्ध करते हैं। **'छन्दमाला'** में **'रामचन्द्रिका'** के अनेक छन्दों का तद्वत् मिलना उतना आश्चर्यजनक नहीं है जितना अन्य ग्रन्थों में क्योंकि वह तो एक छन्द-लक्षणपरक रचना है ही। कोई भी पूर्व-रचित छन्द उदाहरणस्वरूप दिया जा सकता है चूंकि अन्य रचनाएँ विषय-वस्तु परक हैं अतः उनमें रामभक्ति एवं रामकथा विषयक छन्दों का होना अवश्य आश्चर्यजनक लगता है। केशव के मन में उसका भी कोई न कोई औचित्य रहा होगा। कुछ वर्णन ऐसे भी हैं, जिनमें सन्दर्भ या प्रसंग की कोई ऐसी बात नहीं होती, जिसके कारण उनका स्थानान्तरण न हो सके। इसका लाभ भी अनेक कवि उठाते रहे हैं। 'सेनापति' के कई छन्द 'श्लेष-तरंग' और 'ऋतु-वर्णन' दोनों में मिलते हैं। देव के ग्रन्थों में भी कुछ छन्द अनेक ग्रन्थों में पाये जाते हैं। मुक्तक शैली के कारण रीति-कवियों को यह युक्ति अतिरिक्त लाभ के रूप में प्राप्त रही है। केशव इस परम्परा के भी अग्रणी कहे जायेंगे।

प्रबन्ध-काव्य के रूप में **'रामचन्द्रिका'** का मूल्यांकन करने पर शुक्लजी तथा कुछ अन्य आलोचकों ने असन्तोष एवं क्षोभ व्यक्त किया है और केशव की सहृदयता पर ही शंका उत्पन्न कर दी है। परन्तु समग्रतः ऐसा कहना यथार्थ नहीं है क्योंकि अनेक प्रसंगों के वर्णन में केशव तन्मय भी हुए हैं। केशव का काव्य उत्तरोत्तर वैचित्र्य मूलक होता गया। **'रामचन्द्रिका'** के आरम्भ में कवि ने पहले ही अपने संकल्प की विशेषता एवं विभिन्नता स्पष्ट शब्दों में रेखांकित कर दी है अतएव उसकी उपेक्षा करके केशव की इस असाधारण रचना का मूल्य निर्धारित करना उचित नहीं है। 'हरिऔध' जी ने अपने इतिहास-ग्रन्थ **'हिन्दी साहित्य का विकास'** में इसके विषय में जो कहा है, वह भी ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार, **रामचन्द्रिका** की रचना पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए हुई है और हिन्दी संसार में कोई प्रबन्ध-काव्य इतना पाण्डित्यपूर्ण नहीं है। केशव संस्कृत के पूर्ण विद्वान् थे। उनके सामने **'नैषध'** और **'शिशुपाल-वध'** का आदर्श था। वह उसी प्रकार का काव्य हिन्दी में निर्माण करने में प्रवृत्त हुए। इसीलिए **रामचन्द्रिका** अधिक गूढ़ है।

## कविप्रिया

कविप्रिया की रचना '**रामचन्द्रिका**' के बाद सं० 1658 में, (1601 ई. के आसपास) लगभग चार महीने के अन्तर से उसी वर्ष हुई किन्तु इसकी रचनात्मक संगति '**रामचन्द्रिका**' से न होकर '**रसिकप्रिया**' से है। दोनों में न केवल नाम-साम्य है वरन् स्वरूपगत साम्य भी है। केशव के आचार्यत्व की जितनी प्रतिष्ठा '**रसिकप्रिया**' द्वारा हो चुकी थी, उससे कहीं अधिक '**कविप्रिया**' से हुई। दोनों का सम्मिलित प्रभाव 'एक और एक, दो' के स्थान पर 'एक और एक, ग्यारह' जैसा प्रतीत होने लगा।

'**कविप्रिया**' नाम यद्यपि '**रसिकप्रिया**' से साम्य रखने के कारण केशव की मौलिक सूझ का परिणाम लगता है तथापि यह संस्कृत काव्य-शास्त्र में एक ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त हो चुका था। वामन ने स्वयं अपने '**काव्यलंकार सूत्र**' पर जो 'वृत्ति' लिखी, उसका नाम उन्होंने 'कविप्रिया' ही दिया था—

प्रणम्य परमं ज्योतिर्वामनेन कविप्रिया।
काव्यालंकारसूत्राणां स्वेषां वृत्तिर्विधीयते ॥

केशव वामन के इस ग्रन्थ से अपरिचित नहीं थे, इसके पर्याप्त प्रमाण उनकी '**कविप्रिया**' से ही मिलते हैं। वस्तुतः केशव की अलंकारवादी दृष्टि को जिन संस्कृत-काव्याचार्यों से विशेष प्रेरणा मिली, उनमें वामन भी हैं। डॉ. विजयपाल सिंह ने अपने ग्रन्थ **केशव सुधा** (पृ० 28) में उनकी अलंकार विषयक चार प्रमुख मान्यताओं को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करते हुए अन्तिम तीन का बीज भामह, दण्डी, उद्भट और वामन जैसे आचार्यों में निर्दिष्ट किया है, यथा—

1. अलंकार और अलंकार्य में अभेद। वर्ण, वर्ण्य, भूश्री तथा राज्यश्री आदि वर्णनीय विषय भी अलंकार्य न होकर अलंकार हैं। शृंगार आदि भी अलंकार ही हैं। रस मूलक वर्ण्य को उन्होंने विशिष्ट अलंकारों में रखा और विवरण मूलक वर्णन-विधि को सामान्य अलंकारों में।
2. काव्य के सभी विधायक उपकरण, चाहे वे परम्परामूलक हों अथवा शास्त्रीय, अलंकार ही हैं।
3. अलंकार काव्य के अनिवार्य अंग हैं।
4. अलंकार-विधान के लिए दोष-राहित्य प्रथम अनिवार्यता है।

उक्त मान्यताएँ न केवल '**कविप्रिया**' में विशेषतः व्यक्त हुई हैं वरन् मुख्यतः उसी पर आधारित हैं। अतः इसे कवि की प्रतिनिधि रचना कहा जा सकता है। जैसी आत्मीयता उन्होंने इस ग्रन्थ के प्रणयन में प्रदर्शित की है, वैसी '**रामचन्द्रिका**' को छोड़कर अन्य किसी ग्रन्थ के विषय में नहीं प्रकट की। 'कविप्रिया' में कुल सोलह प्रभाव हैं, जिनमें से पहले में गणेश-वंदना के अनन्तर ग्रन्थ का रचना-काल इस रूप में दिया गया है—

प्रगट पंचमी को भयो कविप्रिया अवतार।
सोरह सै अट्ठावनो फागुन सुदि बुधवार ॥4॥

इससे प्रमाणित है कि इसकी रचना कवि ने सं० 1658 में फाल्गुन शुक्ला पंचमी को बुधवार के दिन की। यह तिथि गणना से शुद्ध पायी गयी है। दीन जी ने इसे रचना-समारम्भ तिथि के रूप में ग्रहण किया है पर यह पूर्णता-सूचक भी हो सकती है क्योंकि कवि ने ग्रन्थ के अन्त में वैसा कोई उल्लेख नहीं किया है। उसने सहृदय-मित्रों से दो बार केवल यही निवेदन किया है कि वे इसका उपयोग करते हुए इसकी प्रिया-तुल्य रक्षा भी करते रहें क्योंकि यह कवि की जीवन प्राण है।

सुन्दर वर्ण अथवा सुवर्ण जटिल पद एवं अर्थ से विभूषित यह '**कविप्रिया**' नामक रचना वस्तुतः कवि-प्रिया ही है। प्राकृतिक घातक तत्त्वों से रक्षा करने के साथ-साथ 'विकट' खलों से बचाने के लिए भी केशव ने आग्रह किया है। लगता है, तुलसीदास की तरह उन्हें भी खलों ने अत्यन्त कष्ट दिया होगा तथा इस पोथी के नाश का षड्यन्त्र भी रचा होगा। नृप-वंश-वर्णन के साथ इन्द्रजीत के राजाश्रय और उनकी संगीतप्रियता की प्रतीक 'षट् पातुरों' का परिचय भी दिया गया है, जिनमें प्रवीनराय सबसे विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न थी। काव्य में उसकी रुचि से प्रमाणित होकर केशव ने उसी के निमित्त इस ग्रन्थ की रचना की, ऐसा उन्होंने निस्संकोच स्वीकार किया है—

सविता जू कविता दई ताकहँ परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया कीन्हीं केसवदास ॥6॥

इन्द्रजीत, केशवदास और रायप्रवीण के सम्बन्ध के स्वरूप पर अलग विचार किया गया है अतः यहाँ इतना ही उल्लेख अलम् है। कवि-वंश-वर्णन जो, दूसरे प्रभाव का विषय है, उनके जीवन-वृत्त के प्रसंग में उपयोग में लाया गया है, उसका भी यहाँ संकेत ही पर्याप्त है। केशव ने जिन व्यक्तियों का नामोल्लेख किया है, वे प्रामाणिक हैं और केवल राज-वंश तक सीमित नहीं हैं। अपने पूर्व-पुरुषों एवं आश्रयदाताओं के अतिरिक्त उन्होंने अपने मन्त्र-गुरु गोस्वामी विट्ठल नाथ आदि अनेक विशिष्ट एवं पतिराम सोनार जैसे सामान्य व्यक्तियों का भी '**कविप्रिया**' में स्मरण किया है। केशव तुलसी की तरह प्राकृत जन गुण-गान से उदासीन नहीं थे।

तीसरे प्रभाव के अन्तर्गत 'दूषण वर्णन' नाम से काव्य-दोषों का निरूपण किया गया है। केशवदास 'दूषण-सहित कवित्त' को असह्य मानते हैं। काव्य-शास्त्रियों में दोषों के प्रति उदार और कठोर दोनों प्रकार की दृष्टियाँ मिलती हैं पर केशव इस विषय में उदार नहीं हैं।

चौथे प्रभाव में 'कवि-भेद'; 'कवि-रीति' तथा सोलह शृंगारों के नाम उल्लिखित हैं। कवियों का सत्य, असत्य और सत्यासत्य वर्णन के आधार पर त्रिधा भेद किया गया है। कविरीति में केशव ने कविसमयों एवं कवि-प्रसिद्धियों का समावेश कर लिया है। आगे यही रीति शब्द रीति-काल संज्ञा का आधार बना। 'देव' और 'दास' आदि अनेक कवियों ने केशव से प्रेरणा लेकर इसका उपयोग किया है। पाँचवें प्रकाश में 'सामान्यालंकार' के चार भेद बताकर 'वर्णालंकार' का सविस्तार वर्णन किया गया है। शेष तीन भेदों में वर्ण्यालंकार' का छठे में, 'भूमि-भूषण' का सातवें में और 'राज्यश्री भूषण' आठवें प्रभाव में वर्णित हैं। अधिकतर इस सामग्री को मौलिक माना जाता रहा है परन्तु अब इसे **'काव्यकल्पलतावृत्ति', 'काव्यमीमांसा'** और **'अलंकार शेखर'** पर आधारित सिद्ध किया गया है।" (रीतिकवियों की मौलिक देन, किशोरी लाल, पृ० 223।)

वस्तुतः स्थिति मिली-जुली है। पूर्व रचित ग्रन्थों से प्रेरणा लेते हुए भी केशवदास ने विवेचन-क्रम में निजी उद्भावनाओं का साधिकार समावेश किया है। वह अपने को पूर्वाचार्यों की परम्परा में ही मानकर चले हैं और स्तर के प्रति भी सजग रहे हैं। आठवें के अन्त में शृंगारिक विषय, सुरति, मान, पूर्वानुराग और विरह आदि भी समाहित कर लिये गये हैं।

नवें प्रभाव में 'स्वभावोक्ति', 'विभावना', 'हेतु,' 'विरोध" 'विशेष' तथा 'उत्प्रेक्षा' नामक अलंकारों का निरूपण है। केशव ने इन सबको विशिष्ट कोटि में स्थान दिया है। 'विरोध' के साथ 'विरोधाभास' भी समाहित है पर उदाहरण विरोध का ही अधिक चमत्कारपूर्ण है। यथा—

सोभित सुबास हास सुधा सो सुधार्‌यो बिधि,
बिस को निवास जैसो तैसो मोहकारी है।
'केसौदास' पावन परमहंस गति तेरी,
पर हीय हरन प्रकृति कौने पारी है।
बारक बिलोकि बलबीर से बलीन कहूँ
करत बरहि बस ऐसी बैस बारी है।
एरी मेरी सखी तेरी कैसे कै प्रतीति कीजै,
कृशनानुसारी दृग करनानुसारी हैं।

दसवें प्रभाव में 'आक्षेप' अलंकार के नौ प्रकारों का सविस्तार निरूपण है किन्तु सभी भेदों के नाम एक दोहे में निबद्ध कर दिये गये हैं—

प्रेम अधीरज, धीरजहु, संशय, मरण प्रकास।
आशिष धरम उपाय कहि शिक्षा केसवदास ॥6॥

इस प्रकार **'कविप्रिया'** में व्यास और समास दोनों शैलियाँ प्रयुक्त हुई हैं। आक्षेप अलंकार के अन्तिम भेद 'शिक्षाक्षेप' में केशवदास ने छप्पय छन्द में विर-

चित 'बारहमासा' प्रस्तुत किया है, जिस पर बुन्देलखण्ड और राजस्थान में चित्र-निर्माण की परम्परा चल निकली। इन चित्रों में भी नायिका प्रत्येक मास के सौन्दर्य-वर्णन से नायक को प्रवास पर जाने से विरत करती दिखायी जाती है जैसा 'कविप्रिया' के वर्णन में मिलता है। 'बारहमासा' के सन्दर्भ में इसका उल्लेख किया जा चुका है।

ग्यारहवें प्रभाव में 'क्रम' से लेकर 'अपस्तुति' तक जिन प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध बारह अलंकारों का वर्णन किया गया है, वे मिश्रित प्रकार के हैं। उभयालंकार माना जाने वाला 'श्लेष' भी इसी में है और ऊर्जालंकार नाम से भावमूलक उर्ज-स्वित तथा रसमूलक 'रसवत' भी। यहाँ केशवदास की अलंकारवादी दृष्टि और भी स्पष्ट हो जाती है क्योंकि उन्हीं के द्वारा 'भाव' और 'रस' को अलंकार कोटि में लाने का यत्न किया गया है। 'क्रमालंकार' में एक 'एकावली' का समावेश करते हुए कविशिक्षा-पद्धति अपनाकर पहले एक से दस संख्याओं तक के वे पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं, जिनके सहारे कविगण रचना-तिथियों को छन्दबद्ध करते रहे हैं। फिर 84 तक की कुछ अन्य प्रसिद्ध संख्याओं के द्योतक शब्दों को गिनाया गया है। इनके अनन्तर 'आशिषालंकार' और 'प्रेमालंकार' असाधारण कोटि के प्रतीत होते हैं और केशव की विशेष रुचि के परिचायक हैं। 'श्लेष में चार और पाँच अर्थ वाले छन्द देकर केशव ने अद्भुत चमत्कार की सृष्टि की है। उसके 'अभंगपद' और 'सभंगपद' को उन्होंने 'अभिन्नपद' और 'भिन्नपद' नाम दिये हैं। भेदों में भी कई नये नाम मिलते हैं जैसे 'विरुद्धकर्मा श्लेष', नियम श्लेष' आदि। 'सूक्ष्म' और लेश नामक अलंकारों का वर्णन भी सर्वत्र नहीं मिलता।

इस प्रकार बारहवें और तेरहवें प्रभाव में भी कतिपय नये और कुछ पुराने अलंकार निरूपित हैं। 'उक्ति अलंकार' और 'युक्त अलंकार' जैसे नाम प्रायः अपरिचित ही हैं। चौदहवें प्रभाव में उपमा अलंकार के बाईस प्रकारों का विशद वर्णन है, जिनमें कुछ अन्य अलंकारों के समावेश से उपमा के नये नाम-रूप की हिन्दी में पहली बार परिकल्पना की गयी है। पन्द्रहवें में इसी तरह 'यमक' का सविस्तार निरूपण किया गया है और सोलहवें में चित्रालंकारों का पाण्डित्यपूर्ण वर्णन मिलता है।

## छंदमाला

केशव का आचार्यत्व काव्य के प्रायः सभी अंगों में व्याप्त है। रस, अलंकार, रीति, वृत्ति आदि का समावेश तो उन्होने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' में कर लिया पर छंद-शास्त्र की परम्परा का अनुसरण हिन्दी में उनके द्वारा 'छंदमाला' लिखकर किया गया। कुछ विशेषज्ञों ने 'रामचन्द्रिका के छंद-वैविध्य को छंद-शास्त्र के अतिरिक्त अनुवर्तन का प्रयास कहा और उसमें छंद-नाम के साथ छंद-लक्षण भी

जोड़ दिये गये। इसमें कदापि संदेह नहीं है कि रीतिकाल ही क्या, समस्त हिन्दी-साहित्य में इतने अधिक छन्द प्रयुक्त करनेवाले वे अद्वितीय कवि हैं। इस प्रवृत्ति के पीछे उनकी मानसिकता क्या थी और उसके कारण क्या थे, इन बातों का सम्यक् एवं सन्तोषजनक अन्वेषण अभी नहीं हो सका है पर इस ओर समीक्षकों का ध्यान बराबर जाता रहा है। पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने (केशव ग्रन्थावली, तृतीय खण्ड, पृ० 11) जो टिप्पणी की है, वह द्रष्टव्य है—

"**रामचन्द्रिका** में विविध छन्दों का व्यवहार है। उन छन्दों के लक्षण भी साथ-साथ दिये गये हैं। कुछ लक्षण तो भिखारीदास के '**काव्यनिर्णय**' के भी हैं। कुछ केशव की '**छन्दमाला**' के हैं। '**रामचन्द्रिका**' के विषय में कहा जाता है कि पिंगल के उदाहरण एकत्र करने को दृष्टि-पथ में रखकर उसका निर्माण हुआ। इनकी '**छन्दमाला**' में रामचन्द्रिका के पर्याप्त उदाहरण दिये गये हैं। इसलिए सम्भव है कि नये छन्दों के साथ लक्षण भी दिये गये हों। स्वयं केशव ने ही यह योजना रखी हो। कुछ लक्षणों में केशव की छाप भी है। वे उन्हीं के हैं। पर हो सकता है कि अनुलिपि के समय बहुत से अंश छूट गये हों।"

इस विषम स्थिति को देखकर मिश्र जी ने '**रामचन्द्रिका**' में दिये गये छन्द-लक्षणों को मूल पाण्डुलिपि से अलग करके 'परिशिष्ट' के अन्तर्गत समाहित कर लिया है। तब पिंगल ग्रंथों के हस्तलेख अवश्य प्रचलित रहे होंगे क्योंकि छन्दों के क्रम में ऐसा भी लिखा मिलता है कि '**यह केशौदास के मते दूसरो रूपमाला है**'।

इस पृष्ठभूमि में केशव की '**छन्दमाला**' का परिचय संगत प्रतीत होगा। इसके दो भाग हैं। एक में 77 और दूसरे में 49 छन्द लक्षण-उदाहरण सहित प्रस्तुत किये गये हैं। मंगलाचरण में कवि ने 'भुजंगप्रयात' छन्द का प्रयोग किया है। इसका सम्बन्ध 'पिंगलाचार्य' शेषनाग के श्रोता गरुड़ के पास से सजीव निकल भागने की कथा से जुड़ा है, जिसमें 'भुजंगप्रयात' का श्लेषार्थ सहायक हुआ। सम्भव है, केशव ने जानबूझकर इसी छन्द को मंगलाचरण के लिए चुना हो।

महानाग सोहै सदा देह माला।
महा भावयन्ती करौं छन्दमाला ॥ 2 ॥

पिंगलाचार्य शेषनाग ही तो शिव के कण्ठ में माला-रूप में शोभित रहते हैं अतः शिव 'अनंगारि' की वन्दना से ही ग्रन्थ का आरम्भ किया गया। केशव का प्रधान उद्देश्य भाषा कवियों को छन्द-ज्ञान कराने का था। उन्होंने उसी के निमित्त '**छन्दमाला**' रची,

भाषा-कवि समुझै सबै, सिगरे छन्द-सुभाइ।
छन्दन की माला करी, सोभन 'केशवराइ' ॥3 ॥

एक वर्ण से छब्बीस वर्ण तक सामान्य छन्द होते हैं। इससे अधिक वर्ण-संख्या वाले छन्द दण्डक कहलाते हैं। यह स्पष्ट व्यवस्था देकर कवि ने दोनों वर्गों का निरूपण किया है। बहुत से छन्दों के नाम अल्प-ज्ञात और असाधारण-से हैं, जैसे—'तरणिजा', 'कुमारललिता', 'सुपर्णप्रयात', 'अमल कमल', आदि पहले भाग में और दूसरे में 'विग्गाहा', 'राजसैन', 'सदनमनोहर' और मरहठा' आदि। प्रसिद्ध छन्दों में प्राकृत का 'गाथा' छन्द, अपभ्रंश का 'घत्ता' और 'अरिल्ल', संस्कृत वृत्तों में 'मालती', 'इन्द्रवज्रा', 'उपेन्द्रवज्रा', 'द्रुतविलम्बित' आदि के अतिरिक्त भाषा के 'दोहा', 'सोरठा' आदि भी सम्मिलित किये गये हैं। 'रोला' को केशव ने 'कवित्त' नाम से प्रस्तुत किया है, जो असाधारण तो है किन्तु किसी पूर्व परम्परा का द्योतक दिखायी देता है। 'कवित्त' का जो उदाहरण उन्होंने दिया है वह, केवल एक बात को छोड़कर शेष सभी वार्तों में रोला के समकक्ष है। अन्त में, दो गुरु वर्णों के समायोजन के स्थान पर केशवदास ने एक गुरु और दो लघु अर्थात् भगण का विधान किया है। रोला का यह रूप भी नन्ददास आदि में मिलता है, पर यह विकल्पात्मक ही कहा जायेगा। 'घनाक्षरी' जैसा प्रसिद्ध छन्द भी 'छन्दमाला' में समाविष्ट नहीं है। इसके अन्य नाम 'मनहरण' से जो छन्द उदाहृत है, वह 'घनाक्षरी' से सर्वथा भिन्न है।

अन्त एक गुरु दै करौ, षोडस अच्छर बर्न।
पंच भगन को होत है, छन्द भलो मनहर्न ॥55॥

घनाक्षरी गणात्मक वृत्त है जबकि 'घनाक्षरी' के पर्याय रूप 'मनहरण' में गण-विधान के बिना ही वर्ण-गणना की जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों वर्णिक वृत्त हैं पर उनके लक्षण और स्वरूप में कोई समानता नहीं है। केशवदास ने 'अनंगशेखर' नाम से जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह 8, 8 8 ,7 वर्णों के क्रम से 33 वर्णों वाले चार चरण के 'मनहरण' 'कवित्त' जैसा है पर उसमें 'पंचचामर' छन्द के अनुरूप आद्यन्त लघु-गुरु, लघु-गुरु वाले नियम का अतिरिक्त समावेश मिलता है। परवर्ती कवियों ने भी इस छन्द-रूप का प्रयोग किया है पर केशव द्वारा दिया गया नाम बहु-प्रचलित न हो सका।

'छन्दमाला' की छन्द-नामावली में न तो पूर्ववर्ती रचना अद्दहमाण के 'सन्देस-रासक' में प्रयुक्त सभी छन्दों का समावेश है और न अपने निकट-पूर्व या सम-कालीनों द्वारा प्रयुक्त कवित्त-सवैया जैसे छन्दों का। किन्तु सवैया के अनेक भेद गणात्मक वृत्तों के अन्तर्गत—'मदिरा', 'विजय', 'सुधा', 'वसुधा', 'माधवी' 'चन्द्रकला', 'अमलकमल', 'मकरन्द' और 'गंगोदक' नाम से प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें 'विजय' ही आगे 'मत्तगयंद' के नाम से विख्यात हुआ क्योंकि उसमें भी 'सात भगण और दो गुरु वर्ण प्रत्येक चरण में होते हैं। चरणों की संख्या चार ही है। डॉ० विजयपाल सिंह का यह कथन पूर्णतया यथार्थ नहीं है कि उन्होंने 'कवित्त

और सवैया' का निरूपण छोड़ दिया है। 'अथवा' वर्णित छन्दों के विस्तार की केशव ने चेष्टा नहीं की।' (**केशव सुधा**, पृ० 29)

'**छन्दमाला**' से पूर्व सं० 1610 में हरिराम की '**छन्दरत्नावली**' और बाद में मतिराम का '**छन्दसार पिंगल**' तथा इतर कवियों की अन्य अनेक पिंगल रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि इस क्षेत्र में केशवदास विशिष्ट होते हुए भी अकेले नहीं हैं। यह अवश्य है कि उनके योगदान का सम्यक् तुलनात्मक मूल्यांकन नहीं हुआ।

## वीरसिंहदेवचरित

केशवदास के अन्तिम आश्रयदाता के चरित पर केन्द्रित यह प्रबन्ध-काव्य ऐतिहासिक कथा को कुछ पौराणिक पीठिका देते हुए सुव्यवस्थित रीति से 33 प्रकाशों में पूरा हुआ है। इसके स्वरूप का कवि ने स्वयं निर्देश किया है—

नवरसमय सब धर्ममय राजनीतिमय मान।
वीरचरित्र विचित्र किय केसवदास प्रमान ॥6॥

केशवदास ने इससे कहीं '**वीरचरित्र**' कहा है, जैसे उपर्युक्त छंद में, और कहीं '**वीरचरित**', जैसे ग्रंथ के अन्त में—

वीरचरित संतत सुनत दुख को वंस नसाय।

प्रत्येक प्रकाश की पुष्पिका में 'वीरसिंहजूदेवचरित्रे' अथवा 'श्रीवीरसिंहदेवचरित्र' का प्रयोग हुआ है, जिससे सिद्ध होता है कि कवि ने संक्षिप्त नाम **वीरचरित्र** की मूल कल्पना वीरसिंहदेवचरित्र के रूप में की है। चरित्र' तथा 'चरित' दोनों एक ही शब्द के दो रूप मान लिये गये हैं।

जैसे कुछ लोककथाएँ मृग-मृगी या शुक-सारिका सम्वाद के अलौकिक रूप को अपनाकर चलती हैं वैसे ही इस काव्य में 'दान' और 'लोभ' को पात्रता प्रदान की गयी है। स्वयं विंध्यवासिनी देवी वक्ता रूप में भाग लेती हैं। 'धर्म' तथा उसके परिवार के अन्य सदस्यों, 'सदाचार', 'सत्य', 'ज्ञान' आदि को भी मूर्त रूप दिया गया है और अन्त में 'शुक-सारिका' का भी समावेश कर लिया गया है। 'विजय', 'उत्साह', 'वैराग्य', 'जय', 'धैर्य', 'आनन्द', 'भाग्य', 'पराक्रम' और 'प्रेम' इत्यादि द्वारा एक-एक कर आशीर्वाद दिये जाने के अनन्तर 'सारिका' पूछती है कि भला वह वीरसिंह है कौन, जिसके लिए इतना कुछ हो रहा है ? 'शुक' उत्तर देता है—

धर्म परिवार सब जाकौ देन आयौ राज,
वीरसिंह नरपुर कला नारायण की।

उसका अभिप्राय है कि राजा वीरसिंह में वस्तुतः नारायण का अंश है। इसीलिए उसकी इतनी महिमा है। यह धारणा मध्यकाल में प्राय: सभी देशों में प्रचलित

रही। केशव के समकालीन तुलसीदास ने भी 'ईस अंश नृप' लिखकर यही विचार व्यक्त किया है पर वे स्वयं प्राकृत राजाओं की ओर केशव की तरह उन्मुख नहीं हुए। केशव ने राजाश्रय और राजप्रशंसा में कोई संकोच प्रदर्शित नहीं किया है। **'वीरसिंहदेवचरित'** इसका असंदिग्ध प्रमाण है। लौकिक राजाओं से अलौकिक राजा राम तक पहुँचने में भी उन्हें कोई कठिनाई या अन्तर्विरोध दिखायी नहीं दिया। उन्होंने यह बात प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दी है।

वीरसिंह नृपसिंह मही मँह महाराज मनि।
गहरवार कुल-कलस ईस अंशावतार गनि।
जहाँगीरपुर प्रगट दीह दुर्जन दिन-दूषन।
नदी बेतवे-तीर बसत भव भूतल भूषन।
तिहि पुर प्रसिद्ध 'केसव' सुमति विप्रवंस-अवतंस गुनि।
*बुधिबल प्रबन्ध तिन बरनियो बीरचरित्र विचित्र सुनि ॥3॥*

बेतवा नदी के तीर निवसित 'जहाँगीरपुर', जो ओरछा का ही नया नाम है, को राजधानी बना कर बुन्देलखण्ड पर शासन करने वाले गौरवमय गहड़वार वंशोत्पन्न महाराज-मणि वीरसिंहजूदेव प्रशस्ति में विप्रवंश-विभूषण कवि केशवदास ने अपने बुद्धिबल से यह विचित्र चरित्र ग्रंथ लिखा, जिसमें धर्म तथा राजनिति के तत्त्वों सहित सभी काव्य-समाहित हैं। कवि के विचित्र वर्णन कौशल का वह एक प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह 'रामचन्द्रिका' की तुलना में अधिक प्रवाहपूर्ण, ऐतिहासिक सन्दर्भयुक्त तथा कवि द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव किये गए राजसी जीवन की गरिमा से पूर्ण है किन्तु कवि ने अन्त में वीरसिंह से अधिक जहाँगीर को महत्त्व दे दिया है। तीसरे बरदान के रूप में महाराजमणि वीरसिंह के द्वारा उनकी आयु-वृद्धि का माँगा जाना सांस्कृतिक दृष्टि से आत्मगौरव परक चित्रण नहीं दिखायी देता। यह उस मानसिकता का सूचक है, जिससे केशवदास ने आगे **'जहाँगीरजसचन्द्रिका'** की रचना की। जहाँगीर और अकबर के आपसी द्वन्द्व में वीरसिंह द्वारा जहाँगीर का उत्कट समर्थन किये जाने के कारण ही उन्हें पुनः असाधारण प्रभुता प्राप्त हुई थी। केशवदास ने इसी पृष्ठभूमि में अपने आश्रयदाता के चरित का गौरव प्रदर्शित किया है। कवि में भूषण जैसी राष्ट्रीय चेतना और संघर्ष-वृत्ति का एकान्त अभाव दिखायी देता है। वह गुण-ग्राहकता के आधार पर हिन्दू और मुस्लिम राजसत्ता के बीच सामंजस्य एवं संतुलन स्थापित करने की दिशा में प्रयत्नशील प्रतीत होता है। 'दान' के द्वारा 'लोभ' की निंदा कराकर केशव ने अपने युग के विषय में ऐसा बहुत-कुछ कह दिया है, जो सीधे कहना दुष्कर होता है। सांस्कृतिक मूल्य-बोध की दृष्टि से यह सम्वाद अनुपेक्षणीय है। अयोध्यावासी राम के वंश से प्रारम्भ करके वीरसिंह तक की संक्षिप्त सूची देकर कवि, दान और लोभ—दोनों को देवी की प्रेरणा से उनके नगर में भेज देता है।

वंस सखान्यो सकल गुन, बहु विक्रम उतसाहु ।
बीरसिंघ जेहि पुर बसैं तहँ दोऊ जन जाहु ।।54।।

लोभ, दान और देवी के सम्वाद से ही कथा आगे बढ़ती है। कवि ने वीरसिंह, साह सलीम तथा अन्य लौकिक पात्रों को भी इस सम्वाद-क्रम में समाहित कर लिया है। ऐतिहासिकता और पौराणिक कल्पना को एक स्तर.पर ला दिया गया है। राजनीतिक पृष्ठभूमि का सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत करते हुए केशव दान द्वारा वीरसिंह और रामशाह के बीच हुए बंध-विरोध के विषय में सीधे प्रश्न करा देते हैं।

होहु कृपाल जगत की मात। कहियै बीरसिंघ की बात।
रामसहि सौं कैसी चली। बैर-बेलि कित फूली-फली ।।

'दान' इससे पूर्व ही 'रावण' और 'टोडरमल' के लोभी होने के कारण सर्वनाश की बात कह चुका था और बीरबल की दानशीलता की सराहना भी कर चुका था। देवी वीरसिंह और रामशाह के बीच उत्पन्न हुए विरोध का सारा वृतान्त विस्तार पूर्वक कह सुनाती हैं। रामशाह और राजसिंह दोनों की एकत्रित सेना को किस प्रकार वीरसिंह की सेना ने पराजित किया और कैसे राजसिंह गोपाचल भाग गये, इसका विवरण सुनकर जिज्ञासा और बढ़ जाती है। रामशाह और वीरसिंह के बीच सन्धि कराने के लिए दूत के रूप में कवि केशव मिश्र को भी भेजा जाता है पर रानी कल्याणदेवी की असहमति के कारण सन्धि-प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हो पाता है। आगे की कथा में वीरसिंह की सहायता से सलीम द्वारा अबुलफ़जल के वध का प्रसंग, उपहार स्वरूप राज्यदान, अकबर द्वारा वीरसिंह पर रोष, सामन्तों द्वारा उसे पकड़वाने का असफल प्रयत्न, त्रिपुर का आगरे पहुँचना, अकबर का रायरामान (पित्रदास) को दरबार में बुलाना और इन्द्रजीत का भी वहाँ पहुँच जाना, सलीम और अकबर के प्रखर विरोध की पृष्ठभूमि में घटित हुई अनेक राजनीतिक घटनाएँ, अकबर द्वारा इन्द्रजीत सिंह को बुन्देलखण्ड के राज्य का लोभ देकर अपने पक्ष में करने का प्रयत्न, त्रिपुर द्वारा ससैन्य ओरछा प्रयाण, आक्रमण के विषय में राजसिंह से मतभेद, युद्ध की घोषणा, वीरसिंह की विजय तथा बन्दी बनाये गये राजसिंह की मुक्ति के साथ सभी सामन्तों पर उनका आतंक छा जाने आदि का पूरा विवरण दिया गया है। अकबर अपने उमरावों की भर्त्सना इन शब्दों में करते हैं—

कै तुम गहियो हज की राहु। कै उनकी बसिहिन पर जाहु ।।

'हज' और 'युद्ध' के बीच इस विकल्प की स्थिति आ ही नहीं पाती है, क्योंकि इसी बीच अकबर का देहावसान हो जाता है और शाहजादा सलीम शाहंशाह बन जाता है। 'दान' देवी से पुनः प्रश्न करता है कि बादशाह बन जाने पर सलीम ने वीरसिंह के साथ कैसा व्यवहार किया? विन्ध्यवासिनी देवी उसकी जिज्ञासा

का शमन करने के लिए आगे की कथा कहती है, जिसमें आगरे के दरबार में वीरसिंह को विशेष सम्मान एवं सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है, वह भी रामशाह और इन्द्रजीत की समुपस्थिति में। अन्त में, विदा होते समय जहाँगीर द्वारा अपने समकक्ष गौरव देने की बात भी कहला दी है :—

हौं जु भयो साहिन सिरताज। तुही होइ राहुन कौ राज ॥

जहाँगीर की ओर से फ़रमान भेजकर ओरछा का नाम बदल दिया जाता है और वीरसिंह देव को राजा मधुकरशाह का जितना भी राज्य पहले रहा था, उतना सब दे दिया जाता है। कदाचित् इसीलिए केशव ओरछे के नाम-परिवर्तन का विरोध न करके सारी स्थिति को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं। दूतत्व में हुई अपनी असफलता का उन्हें परिहार होता दिखायी देता है। चौदहवें प्रकाश का अन्त इसी रूप में होता है। देव जो 'देवी' के अतिरिक्त पात्र रूप में बीच में आ जाता है, दान और लोभ से कहता है—

दान लोभ तुम सब सुन्यौ दुहूँ नृपति को भेव।
वीरसिंघ अति दोविजै नरदेबनि को देव ॥ 64 ॥

जहाँगीर और वीरसिंह के बीच शपथयुक्त मैत्री शरीफ खाँ की प्रेरणा से प्रयाग में घटित हुई। वीरसिंह ने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा कि यदि आप मर्यादा निबाहेंगे तो हम आपके चरणों का स्वप्न में भी त्याग नहीं करेंगे—

जो राखहु मरजाद तजौं सपनेहु नहिं पाइनि।

सलीम ने आश्वस्त करते हुए कहा—

तुमही मेरे दोई नैंन। तुमही बुधिबल भुज सुखदैन।
तुम ही आगे पीछे चित्त। तुमही मन्त्री तुमही मित्त ॥

केशव ने सलीम से यहाँ तक कहला दिया है कि वह वीरसिंह के लिए अपने प्राण तक दे सकता है—'तुम लगि हौं छाँड़ौं निज प्रान।' वीरसिंह के द्वारा भी वैसा ही भावपूर्ण उत्तर दिलाया गया है—

तुम्हैं छोड़ि मन आवै आन। तौ सब भूलै धर्म-विधान ॥

सलीम ने विश्वास प्राप्त करके वीरसिंह को अबुलफज़ल की ओर से शत्रुतापूर्ण व्यवहार की समस्या सामने रक्खी। वीरसिंह ने उसकी भूल को क्षमा कर देने का आग्रह किया परन्तु अन्ततः 'पराइछा' के पड़ाव में वह वीरसिंह की सेना द्वारा मार दिया गया। उसके सिर को वीरसिंह ने सलीम के पास चम्पतराय बड़गुजर के द्वारा भिजवा दिया। सलीम की ओर से भी वीरसिंह के राज्याभिषेक के लिए छत्र-चँवर अस्त्र-शस्त्र आदि भेजे गये। केशव ने इस प्रसंग को तथा ऐसे अन्य ऐतिहासिक प्रसंगों को सूक्ष्म विवरणों के साथ विस्तार प्रस्तुत किया है। वीरसिंह देवचरित्र का पूर्वार्द्ध ऐतिहासिक घटनाओं और उनके विस्तृत वर्णनों से पूर्ण है। कुछ विवरण ऐसे भी मिलते हैं, जिनसे ऐतिहासिक गुत्थियाँ सुलझती हैं। केशव-

दास ने अगणित व्यक्ति-नाम विविध प्रसंगों में इस रचना में समाहित किये हैं यथा—राजसिंह, भारतशाह, कल्यान दे, रावभूपाल, जादोराय, कृपाराम, दामोदर, अब्दुल्ला खाँ, शरीफ खाँ, पहाड़ खाँ, जुझापय, मानसिंह, नरहरिदास, माधोदास, साहिबराय, खाण्डेराय, उदैमनि मिश्र आदि-आदि। यह सूची काफ़ी लम्बी है और इस बात का प्रमाण है कि कवि ने अपने विवरणों को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने का पूरा उपक्रम किया है।

उत्तरार्द्ध में ब्रह्मसागर और वेत्रवती आदि प्राकृतिक स्थलों के वर्णन के साथ चतुर्भुज-दर्शन, रावरलोक में हयशाला, नगर चौगान, राजलोक तथा उसमें निवसित वनितागण का समृद्ध वर्णन किया गया है। ओरछा में निर्मित वन-वाटिका, क्रीड़ागिरि, जल-केलि के रमणीक स्थल का वर्णन करने के अनन्तर केशव ने मदन-महोत्सव का आकर्षक वर्णन किया है। कामदेव के रूप में राजा वीरसिंह को ही प्रतिष्ठित करके उन्हें पूजित-अर्चित किया जाता है।

> आसन बैठे नृपसिरमौर। सिर पर लसत आम को मौर।
> नृप कर फूलन को धनु लियौ। फूलि फूलि सर संजुत कियौ।
> अपनै पति पतिनीनि अनूप। कीनौ कामदेव को रूप।

वीरसिंह के इस ललित रूप का महत्त्व कवि ने शुक-सारिका द्वारा इस प्रकार प्रदर्शित कराया है कि जब अस्त्र धारण करके युद्ध-विजय का प्रसंग समाप्त हो गया तभी कुसुमायुध धारण करने की स्थिति आयी। राज्यश्री का विस्तृत और अलंकृत वर्णन यहीं से आरम्भ हो जाता है और उन्तीसवें प्रकाश में पूर्णता पर पहुँचता है। बीच में राजसभा वर्णन और उसमें दान-लोभ के सम्मान का प्रसंग वर्णित है। राजा ने अपनी तलवार से दारिद्र्य रूपी द्विरद को सिंह होकर पराभूत कर दिया है।

> केशव दारिद दुरद कौं, केहरिनख उनहारि।
> वीर सिंह नरनाथ के, हाथ लसति तरवारि॥

यही नहीं बैरियों की समस्त राज-श्री भी उन्होंने अपने हस्तगत कर ली है।

> बैरिन की सब श्री जिनकी तरवारि तरंगनि माँझ बसी है।

कवि ने राजसभा में सूर्यतुल्य शोभित राजा वीरसिंह के लिए अनेक उपमान प्रस्तुत करते हुए भरत, भगीरथ, पृथ, दशरथ, पार्थ, विक्रम और जनक सभी को सामने ला दिया है। पौराणिक ज्ञान का प्रदर्शन इस ग्रंथ में ऐतिहासिक तथ्यों से कम नहीं किया गया है पर इतिहास प्रस्तुत रूप में आया है, जबकि पुराण अप्रस्तुत रूप में।

'दान' और 'लोभ' ने राजसभा का भव्य दृश्य देखा तो मूर्तिमान होकर वहीं खड़े हो गये।

> दान लोभ देखे नृपति देखी सभा उदार।
> मूरति धरि ठाढ़े भये जाय राज दरबार॥

यह विप्र-वेश का उल्लेख नहीं है पर आगे यह रूप-धारण स्पष्ट हो जाता है, जब केशव उनके रूप को प्रतिहार द्वारा सूक्ष्म वर्णन कराते हैं। यहाँ केशवदास ने अपने स्वभाव के अनुसार उत्प्रेक्षाओं की शृंखला रच दी है। यह भूल गये कि प्रतिहार इतना वर्णन कैसे कर सकता है ? ऐसे स्थलों पर वे स्वयं पात्र की आत्मा में प्रवेश कर जाते हैं। 'दान' 'लोभ' को विप्र समझकर राजा वस्त्राभरण भेंट कर उनके पाँव पखारता है और नये सिंहासन मँगाकर उन पर उन्हें पधराता है। दोनों छंद बद्ध रूप में उसका यश-वर्णन करते हैं।

पढ़े गीत तब द्वै दुहिन बदन कमल मुस्क्याय।

यहाँ छन्दों के लिए केशव ने 'गीत' शब्द का प्रयोग प्रशस्ति-गान के अर्थ में किया है, पर है, असाधारण ही। 'दान' लोभ' को परस्पर पूरक रूप में प्रस्तुत करते हुए हर्ष के वातावरण की सृष्टि करके कवि ने इस प्रसंग का अन्त इस प्रकार किया है—

दीबे ही कहँ दान, लोभ लीबे कह कीनै।
देहि न लेहि ते बेद कहैं सबहीते हीने।

यहाँ वेद की साक्षी देकर दान और लोभ दोनों को देवत्व प्रदान किया गया है। दान-लोभ सम्मान का यह प्रसंग राजधर्म वर्णन ही है, पर ऐसा निर्देश नहीं किया गया है। आगे जिसे राजकर्म कहा गया है, वह वस्तुतः राजधर्म से सम्बद्ध है। इसमें संस्कृत के अनेकानेक श्लोक पाण्डित्यसूचक हैं। बत्तीसवें प्रकाश में जय-विजय, वैराग्य, धैर्य, आनन्द, भाग्य-पराक्रम इत्यादि राजप्रशंसा करते हैं। 'प्रेम' दारिद्र्य की स्त्री के द्वार पर आने की सूचना देता है। इसी तरह अन्य कल्पित और वास्तविक व्यक्तियों के आशीर्वचन से काव्य पूरा होता है। जैसा प्रारम्भ में निर्दिष्ट है।

## विज्ञानगीता

यह ग्रंथ केशवदास की वैराग्य एवं ज्ञान-प्रवृत्ति से उत्पन्न है किन्तु इसके निर्माण की प्रत्यक्ष प्रेरणा उनके आश्रयदाता ओरछानरेश वीरसिंह से मिली, जिनका चरित वे इससे पूर्व **'वीरसिंहदेवचरित्र'** के रूप में प्रस्तुत कर चुके थे। शिव-पार्वती सम्वाद को देखकर इसकी तुलना **'रामचरितमानस'** से की गयी है जबकि यह विभिन्न आध्यात्मिक प्रश्नों तथा तद्विषयक संवादों का संपुंज अधिक प्रतीत होता है, प्रबन्ध कम। कृष्ण मिश्र के प्रसिद्ध ग्रंथ **'प्रबोधचन्द्रोदय'** की शैली का अनुसरण करते हुए केशवदास ने इसमें अमूर्त भावों को मूर्त बनाकर उन्हें पात्रता प्रदान की है। ग्रंथ कुल मिलाकर 21 'प्रभावों' में पूर्ण हुआ है और **'रामचन्द्रिका'** की तरह कवि ने प्रत्येक प्रमाण में उसके विषय का सार दे दिया है तथा अपने अन्य प्रबन्ध ग्रंथों की तरह ही, अन्त में 'वर्णन नाम' देने की

परम्परा का भी निर्वाह किया है। इसमें निम्नलिखित क्रम से प्रभावों को नामांकित किया गया है।

1. श्री शिवपार्वती-प्रश्न 2. कलह-रति-काम-सम्वाद 3. अहंकार-दंभ-संवाद 4. सप्तद्वीप-वर्णन 5. मिथ्यादृष्टि-महामोह-मन्त्र 6. महामोह मिथ्यादृष्टि-संवाद 7. चार्वाक-महामोह-कलि-काम-लोभ-मन्त्र 8. पाषण्ड-धर्म-वर्णन 9. विवेक-राज-धर्म-उद्यम-मन्त्र 10. वर्षा-शरद-वर्णन 11. श्री बिन्दुमाधव-विश्वनाथ-गंगा-स्तुति 12. विवेकजय-वर्णन 13. गाधि-माया-विलोकन 14. मन-शान्ति-वर्णन 15. विवेक-जीव-संवाद 16. विवेक-जीव-संवाद 17. ज्ञानाज्ञान-चतुर्दश-भूमिका 18. प्रह्लाद-चरित्र 19. बलि-चरित्र 20. योग-सप्त-भूमिका 21. महामोह-परिहार।

डा० किरणचन्द्र शर्मा ने 16 वें प्रकाश के अन्त में दिये नाम को अनुपयुक्त मानकर अपनी ओर से 'नृपति शिखीध्वज-संसार-विजय नाम' सुझाया है और पहले को स्थानान्तरित भी कर दिया है, जो उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। प्रभावों को विषय और शैली की दृष्टि से पाँच वर्गों में सहज ही विभाजित किया जा सकता है :—

1. संवादात्मक 2. स्तुतिपरक 3. वर्णन-मूलक
4. संख्यात्मक भूमिका-विषयक 5. चरित्रात्मक

यद्यपि केशव ने **'प्रबोधचन्द्रोदय'** के नाट्यरूप को त्याग कर उसी कथा को अपनी ओर से सम्वर्धित-संशोधित करते हुए प्रबन्धात्मक रूप दिया है पर नाटकीयता घटनाओं और संवादों में फिर भी झलकती है। उत्तरांश में कवि ने **'योगवासिष्ठ'**, **'गीता'** और **'भागवत'** से प्रचुर सामग्री ली है तथा बहुत-कुछ अपनी ओर से भी जोड़ दिया है। एक बार वीरसिंह अपने सभासदों के बीच बैठे केशवदास से प्रश्न करते हैं कि क्या कारण है कि गंगास्नान से भी मनोविकार दूर नहीं होते—'चित्त न तजत विकार न्हान नर यद्यपि गंगा।'

केशव कहते हैं, यही प्रश्न तो पार्वती ने शिव से पूछा था और शिव ने विवेक के द्वारा मोहनाश के बाद ही प्रबोध का उदय सम्भव बताया और कहा इसके लिए वाराणसी सर्वोपरि स्थल है। तब वीरसिंह 'विवेक' और 'महामोह' के युद्ध के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। शिव के वक्तव्य को 'कलिकाल' सुन लेता है और 'कलह' तथा 'काम' को भी एक-दूसरे से सूचना मिल जाती है। 'रति' जब "महामोह' से 'विवेक' के बल को कुछ अधिक बताती है तो 'काम' उग्र हो उठता है। 'ईश' और 'माया' के संयोग से उपजे 'मन' की दो स्त्रियाँ हैं, 'निवृत्ति' और 'प्रवृत्ति'। पहली से विवेक और उसका परिकर उपजता है, दूसरी से मोह और उसके सहचर पैदा होते हैं। दोनों में सौतेलेपन का नाता है। संसार के प्रयोजनों की सिद्धि निवृत्ति मार्ग से होती नहीं है अत: उसकी सन्तति अपने पिता 'मन' को मार डालना चाहती है। 'काम', 'मृत्यु' नामक राक्षसी के उत्पन्न होने की

घोषणा करते हुए शत्रुओं के विनाश की भूमिका रचता है। केशवदास ने 'कलह' को इस अवसर पर दिल्ली भेजकर वहाँ 'दंभ' के प्रभुत्व का निर्देशन किया है, जो उनकी अपनी सूझ है। यमुनातट पर ध्यानस्थ अहंकार को 'दंभ' विवाद होने पर अपने पितामह के रूप में पहचान लेता है और विवेक के बैर की सारी कथा सुना देता है। 'दंभ' 'कलह' को प्रबोध का उदय रोकने में पेट को समर्थ बताता है और 'कलह' यह संदेश जाकर महामोह तक पहुँचा देता है। महामोह दोषों का महाकटक लेकर पुष्कर द्वीप होते हुए जम्बूद्वीप पहुँचता है। वह पाखण्डपुर में अपनी राजधानी बनाकर रानी 'मिथ्यादृष्टि' से विवेक को जीतने की विधि पूछता है। रानी काशी में 'महामोह' के विजय के प्रति सन्देह प्रकट करती है परन्तु वह अपने परिवार के साथ रूद्र-कोप की चिन्ता और भय छोड़कर अभियान पर चल ही देता है। 'मिथ्यादृष्टि' के बताये उपाय के अनुरूप वह भैरवी को बुलाकर 'विवेक' की पत्नी 'श्रद्धा' का अपहरण करा लेता है। चार्वाक की शरण ग्रहण करके वह आगे की योजना बनाता है। 'महामोह' 'श्रद्धा' का अपहरण करके 'पाषण्ड' को दे देना चाहता है। यह बात 'शान्ति' सुन लेती है और उसकी खोज में प्रवृत्त होती है। आकाशवाणी द्वारा उसे 'श्रद्धा' के मिलन की सूचना मिलती है और उधर 'विष्णुभक्ति' की कृपा से 'श्रद्धा' 'भैरवी' के चंगुल से छूटकर 'वृन्दादेवी' के पास पहुँच जाती है। 'राजधर्म' तथा 'विवेक' में शास्त्रार्थ छिड़ जाता है। अंततः विवेक उसके परामर्श से 'विष्णुभक्ति' के आदेश पालन के लिए तत्पर हो जाता है। इस अवसर पर 'उद्यम' आकर उसे 'महामोह' की सारी गतिविधि सूचित करते हुए सावधान करता है। 'महामोह' गंगा पार कर लेता है पर 'बिन्दु-माधव' और 'विश्वनाथ' की कृपा से विवेक की विजय होती है। 'मन' 'महामोह' की पराजय का समाचार पाकर अपने काम-क्रोधादि विकार-पुत्रों के नाश सेअत्यन्त क्षुब्ध हो जाता है। संकल्प उसे समझाता है। परन्तु उसके शोक-संतप्त हृदय में विवेक प्रवेश नहीं कर पाता। 'विष्णुभक्ति' उसके शोक-शमन के लिए 'सरस्वती' को प्रेरित करती है। सरस्वती माया का रहस्य समझाते हुए ब्रह्म-विचार की महत्ता और सत्यता का प्रतिपादन करती है। केशव यहाँ सरस्वती के मुख से कदाचित् स्वानुभूत जीवनानुभव व्यक्त कराते हुए कहते हैं—

> हरिसों लगाउ होय मानस सो 'केसोराज'
> मानस सो लाये मन मानस जरत है ॥

यहाँ वे स्पष्टतः भक्त की भूमिका में पहुँचकर मनुष्य के प्रति आसक्ति के प्रति पश्चाताप प्रकट करते हुए हरि-भक्ति का पक्ष लेते हैं। राज-भक्ति और राज-प्रशंसा के अतिरेक की यह प्रतिक्रिया अत्यन्त स्वाभाविक है पर यह विशेष महत्त्व-पूर्ण है कि केशव ने इसे अभिव्यक्त किया।

जब 'सरस्वती' के उपदेश द्वारा 'मन' परिशुद्ध हो जाता है तो 'विवेक' और 'जीव' में संवाद आरम्भ हो जाता है। 'विवेक' वशिष्ठ द्वारा प्राप्त शिवोक्त ज्ञान अर्थात् 'विलासिनी बुद्धि' पर विजय का समर्थन करता है परन्तु जीव की जड़ता कठिनाई से भंग हो पाती है। अन्ततः विवेक अपने ज्ञानोपदेश द्वारा जीव को मन के वशीभूत करने की दिशा में प्रवृत्त करता है और 'श्रद्धा' उसके कल्याण के प्रति आशान्वित हो उठती है। किन्तु 'शान्ति' 'वेदसिद्धि' को बुलाने चली जाती है। वेदसिद्धि अपने भटकने का पूरा वृत्तान्त सुनाती है कि वह कैसे 'वेदविद्या' 'तर्क-विद्या' आदि के पास भटकती रही और कैसे दण्डकारण्य में राम ने उसे त्रास-मुक्त किया तथा 'गीता' ने आश्रय दिया। 'जीव' के प्रश्न करने पर 'वेदसिद्धि' ने उसे अज्ञान और ज्ञान दोनों की सप्त भूमिकाओं से परिचित कराया। 'प्रह्लाद' और 'बलि' की पौराणिक कथाओं से इस ज्ञानोपदेश को समर्थित किया गया है। तदनन्तर 'वेदसिद्धि' सृष्टि और प्रलय के रहस्य पर प्रकाश डालती है। अहंकार के त्रिगुणात्मक रूप की व्याख्या सुनकर 'जीव' का मोह दूर हो जाता है। 'अहंकार' का नाश प्रबोधोदय का आधार बनता है। इस स्थल पर गीतोक्त 'जीवनमुक्त' के लक्षण बताये जाते हैं। संसार के मिथ्यात्व की प्रतीति के साथ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। 'विवेक' के द्वारा 'महामोह' के नाश का उपक्रम और परिणामस्वरूप 'जीव' के हृदय में प्रबोध का उदय ही इस कथा का केन्द्र बिन्दु रहा है, जिसकी प्रेरणा कवि को मूलतः **प्रबोध-चन्द्रोदय** नाटक से मिली, जिसे कवि ने और अधिक समृद्ध बनाकर **विज्ञानगीता** के रूप में प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ आद्यन्त शान्त-रस-प्रधान है प्रौढ़ता-सम्पन्न भी। अन्त में केशव ने 'वीरसिंह' और 'शत्रुघ्न' के प्रश्न और अपने तथा वसिष्ठ और 'ब्रह्मजू' के उत्तरों द्वारा राम नाम की महिमा प्रतिपादित करते हुए ग्रन्थ समाप्त किया है। राजकृपा से अन्ततः उनका भी कल्याण हो गया।

## जहाँगीरजसचन्द्रिका

केशव का यह ग्रन्थ नाम से रामचन्द्रिका सदृश और शैली से प्रायः वीरसिंह-देवचरित्र के समान है। आरम्भ में कवि ने देवताओं से 'जहाँगीर सकसाहि' की प्रतिपल रक्षा करने का निवेदन किया है तदनन्तर ग्रन्थ का रचना-काल सं० 1669 सीधे-सीधे इस प्रकार दिया है—

> सोरह सै उनहत्तरौं माधव मास बिचारू।
> जहाँगीर सकसाहि की करी चन्द्रिका चारू ॥2॥

बैरम खाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना शहंशाह अकबर के उत्तराधिकारी शहज़ादे सलीम के इतने प्रिय रहे कि कवि उन्हें 'जहाँगीर-तनु-त्रान' कहता है और उन्हें रामचन्द्र के तीर से उपमित करता है—

> खलनि के घालिबे को, खलक थे पालिबे को,
> खानखाना एक रामचन्द्र जू के तीर सो ॥5॥

आगे उनके पराक्रम और वंश के यश-विस्तार रूप में उनके पुत्र एलच का भी स्मरण किया गया है—'बैरमखान के खानखानाजु हैं खानखानाजु के एलचजैसो ॥' इन्हीं एलच से पूर्वजन्म के प्रणय-बल से केशवदास की भेंट हो जाती है। वह उनसे यह प्रश्न करता है कि 'उद्यम' बड़ा है या 'कर्म'—

> एक बाल तिहि बूझियौ पाइ खबनि को मर्म ।
> कहिजै केसौराय जू उद्दिम बड़ो कि कर्म ॥10॥

केशवदास स्वयं ही 'केशवोवाच' लिखकर अपना वक्तव्य पात्र-रूप में छन्दबद्ध करते हैं। उनके अनुसार 'उदय' और 'भाग्य' के बीच कभी ऐसा ही विवाद हुआ था। वे सुन्दर वेश धारण किये कहीं गंगा-तट पर बैठे थे। प्रकृति-व्यापार से तर्क देकर 'भाग्य' कहता है कि उद्यम कभी कर्म-लिखे दारिद्र्य को दूर नहीं कर सकता। 'उदय' इसका प्रतिवाद करते हुए लोकाश्रित कर्मशीलता के उदाहरण देता है। दोनों विवाद करते हुए आकाशवाणी से प्रेरणा पाकर गंगा-तट से चल-कर यमुना-तट पर निवसित मथुरा नगरी में भूतेश महादेव के पास जा पहुँचते हैं और उनसे फिर वही प्रश्न करते हैं। शिव के मुख से कवि ने अनेक छन्दों में जहाँगीर के सुयश और वैभव का अतिरंजनात्मक वर्णन कराया है। अन्ततः शिव दोनों देवताओं को उन्हीं के दरबार में जाने का परामर्श देते है क्योंकि उन्हीं के देने से जहान में प्रभुता मिलती है, ऐसी उनकी धारणा है:—

> ताकौं दोऊ देवता बूझहु जाइ सुजान ।
> जाहि बड़ाई देत वै सोई बड़ो जहान ॥39॥

यहाँ कवि ने देवाधिदेव महादेव के व्यक्तित्व को बहुत नीचे ला दिया है। कवि के मन में ऐसा करते हुए कोई संकोच नहीं हुआ, यही आश्चर्य है। यह उस मध्य-कालीन मानसिकता का ज्वलन्त उदाहरण है, जिसमें राजप्रशंसा करने में कवि औचित्य की किसी भी सीमा को पार कर जाने के लिए तत्पर हो जाता था। कदाचित् इसी मानसिकता का विरोध 'प्राकृत जन गुणगान' के निषेध रूप में भक्त-कवियों ने किया किन्तु केशवदास पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। 'भाग्य' और 'उदय' को कवि आगरे के दरबार में ले जाता है जहाँ उन्होंने '**साहिबी को आगरो बिलोक्यो आनि आगरो**' के अनुसार वैभव और विलास का अद्वितीय रूप देखा। द्विपद-चतुष्पद सभी की क्रीड़ाओं का उल्लेख करने का अवसर कवि ने निकाल लिया। नृत्य-गान, मल्ल-युद्ध, पशु-युद्ध, गज-युद्ध आदि सबका सन्दर्भ

देकर कवि ने 'आम खास' को समुद्र मन्थन के दृश्य जैसा बताया है, जिसमें एक ओर असुर और दूसरी ओर देवता स्थित होकर मन्थन करते हैं :—

मुसलमान इस दिसि असुर, एक देव नरदेव ।
आमखास जहाँगीर को, सागरु को सो भेव ।।53।।

यहाँ व्यंजना से हिन्दू राजाओं को देव कोटि में रखने के क्रम में कवि का अपने इन्द्रजीत और वीरसिंह जैसे आश्रयदाताओं के प्रति पक्षपात स्पष्ट रूप से सामने उभर आया है किन्तु आगे जब दोनों आगन्तुक खुर्रम, आलमशाह, खानखाना, मानसिंह, आज़म खाँ, एलच बहादुर, राव चन्द्रसेन, राजा भोजराय खानजहाँ आदि की महत्ता का मिला-जुला वर्णन करते हैं तो उसका परिहार हो जाता है और वह काव्योक्ति मात्र प्रतीत होने लगती है। केशवदास ने 'भाग्य' के द्वारा छन्द संख्या 99 से 102 तक चार छन्दों में उन सब प्रदेशों के शताधिक नाम गिनाये हैं, जिनका प्रतिनिधित्व वहाँ के अधिपति आम खास में कर रहे थे। भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से यह देश-सूची बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें 'अरब, ईराक' से लेकर 'रूम सामराज' तक शामिल हैं। 'नेपाल' और 'बलक बलोच' जैसे निकटवर्ती प्रदेश तो हैं ही। भारत के भीतरी प्रदेशों में कश्मीर, गिरनार, द्रविड़ आदि की गणना करते हुए किरकीची और 'कालकेस' को भी मिला दिया गया है, जिसमें कोई क्रम नहीं दिखायी देता। छन्द-प्रवाह और अनुप्रास के आग्रह पर उन्हें स्वच्छन्द रीति से संग्रथित किया गया है। 'वीरचरित्र' की तरह इस ग्रन्थ में भी 'रामचद्रिका' में आये अनेक पद्य किंचित् नामान्तर एवं रूपान्तर से निस्संकोच समाहित कर लिये गये हैं। 'विधि के समान है विमानीकृत' से आरम्भ होने वाला पद्य (संख्या-110) इसी प्रकार की रचना है। 192 संख्यक छन्द भी इसी तरह का है।

दान में जहाँगीर को दूसरा विधाता तक कह दिया गया है। कवि को उसके दान और कृपान में सादृश्य लक्षित होता है। 'भाट' और 'ब्राह्मण' एवं विप्र की उपस्थिति से भाग्योदय के वार्ता-क्रम में कुछ विस्तार करने का उपक्रम किया गया है पर बहस का प्रसंग उसी तरह चलता रहता है। 'साहिजू' के हस्तक्षेप और निर्णयात्मक कथन से सबका समाधान हो जाता है। वह कथन दोनों को समान और अन्योन्याश्रित सिद्ध करता है।

उदय भाग सति उदित मति सुनि सर्वज्ञ प्रमान।
जग में उद्दिम कर्म ये मेरे जान समान ।।77
करम कलै उद्यि करें, उछिय करमहि पाइ।
एकै धरम दुइँन को कीनौ विधना दाइ ।।78

जहाँगीर दोनों को अपने राज्य में सपरिवार निवास करने का प्रस्ताव करता है। जब केशव से जहाँगीर कुछ माँगने को कहता है तो जो उत्तर वे देते हैं, वह अवश्य स्वाभिमानपूर्ण लगता है—

यद्यपि हरिजू माँगिवो दियो हमैं उपजाइ।
हौं माँगौं जगदीस पै सुनौ साहि सुखदाइ ।।99

किन्तु इसके बाद वे प्रशस्तिगान करने लगते हैं, जिसमें यह माना गया है कि जहाँगीर ने उन्हें 'राय' से 'राजा' बना दिया है।

# केशवदास और बीरबल

अपने आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह पर अकबर द्वारा रुष्ट होकर किये गये एक करोड़ रुपये के जुर्माने को माफ़ कराने में केशव को सफलता न मिलती यदि उनके कवि-मित्र एवं प्रसिद्ध सभासद चतुर बीरबल ने अपने बुद्धि-कौशल का उपयोग न किया होता। और यदि केशव के काव्य ने बीरबल को वास्तव में प्रभावित न किया होता तो भी यह कार्य सम्भव न होता। केशव के निम्नलिखित पद्य को सुनकर बीरबल ने न केवल उसकी सराहना की वरन् हुण्डियों के रूप में छ: लाख या जो कुछ पास में था, सब दे डाला।

पावक पंछी पसू नर नाग नदी नद लोक रचे दसचारी।
केसव देव अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी।
कै बरबीर बली बलबीर भयो कृतकृत्य महाव्रतधारी।
दे करतापन आपन ताहि दई करतार दुवौ करतारी ॥

अप्रत्याशित धन लाभ और गुणग्राहकता की सम्मलित प्रतीति से प्रेरित होकर केशवदास ने बीरबल की प्रशस्ति में तत्काल एक और छन्द रचकर सुना दिया, जो कम वैचित्र्ययुक्त नहीं है। यथा—

केसवदास के भाल लिखो विधि रंक को अंक बनाय सँवार्‌यो।
छौरें छुट्‌यो नहिं धोये धुयो, बहु तीरथ के जल जाय पखार्‌यो।
ह्वै गयो रंक ते राउ तहिं जब बीर बली बलबीर निहार्‌यो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुख चार्‌यो ॥

केशव ने टोडरमल को जितना कृपण, अनुदार और रूक्ष देखा बीरबल को उतना ही दानवीर, उदार तथा सहृदय पाया। यह प्रतीति एक बिडम्बनापूर्ण तुलना बनकर तब प्रकट होती है, जब दोनों इस संसार से विदा हो जाते हैं और 'लोभ' से 'दान' का संवाद होता है।

टोडरमल तुव मित्त मरे सब ही सुख सोयो।
मोरे हित बरबीर बिना टूकु दीननि रोयो। —बीरचरित्र-1/64

एक के अभाव में सब सुख की नींद सोते हैं पर दूसरे के न रहने पर दुखी-दीन जन रोने लगते हैं। केशव ने यहाँ बीरबल के लिए 'मोरे हित' शब्दों का प्रयोग करके उनके आत्मीय और हितैषी रूप को रेखांकित कर दिया है। दान की उक्ति होते हुए भी, इसमें केशव की निजी भावना स्पष्टत: अभिव्यक्त हुई है। पौराणिक

और ऐतिहासिक प्रसिद्धि-प्राप्त दान-दाताओं की सूची में केशव ने अपनी ओर से जो दो नाम जोड़े हैं, उनमें पहला नाम इन्द्रजीतसिंह का है और दूसरा बीरबल का। अपने प्रमुख के समकक्ष बीरबल का नाम रखना पर्याप्त महत्ता रखता है। उनकी दानशीलता का वर्णन केशव ने इस प्रकार किया है—

पाप के पुंज पखावज 'केसव' सोक के संख सुने सुषमा मैं।
झूठ के झाँझि बड़े डर के डफ, आवझ जूथन जानी जमा मैं।
भेद की भेरी, अलोक के झालरि कौतुक भो कलि के कुरमा मैं।
जूझत ही बलबीर बजे बहु दारिद के दरबार दमा मैं।।

—**कविप्रिया** 6/76

कलियुग के सभी साथी-सहयोगी प्रसन्न हो उठे, जब बीरबल ने युद्ध में वीरगति प्राप्त की। यह ऐतिहासिक सत्य है कि बीरबल काबुल में 1586 ई० में युसुफ़ भाइयों से युद्ध करते हुए मारे गये थे। इस सम्बन्ध में बुन्देलखण्ड में एक किम्वदन्ती प्रचलित है कि जब इस दु:खद समाचार को अकबर के पास ले जाने का कोई साहस न कर सका तो केशवदास ने यह दोहा रखकर प्रकारान्तर से उन्हें सूचित किया—

याचक सब भूषित भये रह्यो न कोउ लेन।
इन्द्रहु को इच्छा भई, भयो बीरबल देन।।

अकबर ने भी अपने शोकातुर मन से निकले भाव को इस प्रकार सोरठाबद्ध कर दिया—

सबको सब कुछ दीन्ह, दु:ख न काहू को दयिो।
सो करि हमको दीन्ह, भली निबाही बीरबल।।

यह दोनों छन्द भी बीरबल की दानशीलता को ही प्रमाणित करते हैं। केशव की अतिशयोक्ति पर शाही मोहर लग जाती है।

**'कविप्रिया'** में प्रहेलिका अलंकार के एक उदाहरण में केशव ने जो पद्य प्रस्तुत किया है, उसमें बीरबल के दरबार का अभिप्राय सन्निहित है—

सब सुख चाहो भेगवै, जौ पिय एकहि बार।
चंछ गहैं जहँ राहु कों, जैयो तिहि दरबार।।37
बीरबर को दरबार जानिबी।

यह सन्दर्भ बीरबल के जीवन-काल का है और उनके दरबार के असाधारणत्व की गाथा एक उलटवाँसी के रूप में सामने रखता है। सामान्यतया राहु चन्द्रमा को ग्रसता है पर केशव बीरबल के दरबार की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि उसमें चन्द्रमा राहु को ग्रस लेता है अर्थात् कभी बाधा उपस्थित नहीं होती। केशव ने बीरबल से केवल यही चीज़ माँगी थी कि आपके दरबार में मुझे कोई न रोके—

योंही कस्यो जु बीरबर माँगि जु मन में होइ।
माँग्यो तब दरबार में मोहि रोकै कोइ ॥ **कविप्रिया**—2/19

यहाँ भी केशव ने बीरबल का नाम इन्द्रजीत के ठीक बाद में रक्खा है। बीरबल कुल 19 आदमियों में एकमात्र ऐसे हिन्दू थे, जिसने **'दीन-इलाही'** मत स्वीकार करके अकबर का साथ दिया था। आश्चर्य है कि केशव ने इस बात का कहीं उल्लेख नहीं किया और न उनके कवि होने का। पर वे इन बातों से अवगत अवश्य रहे होंगे।

## केशवदास और रायप्रवीण

केशवदास और रायप्रवीण अथवा प्रवीणराय का सम्बन्ध केशवदास और बिहारी के सम्बन्ध से अधिक प्रामाणिक आधार रखता है। स्वयं केशव ने अपनी **'कविप्रिया'** में **'रायप्रवीण'** की प्रशंसा अनेक दोहों में इतने असाधारण एवं अतिरंजनापूर्ण ढंग से की है कि लगता है कि वे उसके व्यक्तित्व से बहुत गहरे प्रभावित थे। उनके आश्रयदाता राजा इन्द्रजीत ने विशेष संगीत प्रियता एवं काव्य-प्रेम के कारण अपने दरबार में छ: नर्तकियों का एक 'अखाड़ा'-सा बना रक्खा था, जिसे इन्द्रसभा से तुलनीय माना जाने लगा। स्वयं केशवदास ने **इन्द्रजीत** को 'भूतल को इन्द्र' कहा है और उसकी संगीत-सभा का परिचय इन शब्दों में दिया है—

कर्‌यो अखारो राज कै सासन सब संगीत।
ताको देखत इन्द्र ज्यों इन्द्रजीत रनजीत ॥ 41

इस अखाड़े में छ. नर्तकियाँ (षट पातुर) थीं, जिनमें से प्रत्येक का परिचय केशवदास ने स्वयं छन्दबद्ध रूप में प्रस्तुत करते हुए प्रवीणराय को सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

बाल बहिभ्रम बाल सब, रूप सील गुन वृद्ध।
जदपि भर्‌यो अवरोध, षट पातुर परम प्रसिद्ध ॥ 42
रायप्रबीन प्रबीन अति, नवरंगराय सुबेस।
अतिविचित्रनयना निपुन, लोचनललित सुदेस ॥ 43
मोहति सागर राग की, तानतरंग तरंग।
रंगराय रंगवलित गति, रंगभूसति अंग, अंग ॥ 44
तन्त्री तुंबुरू सारिका, सुद्ध सुरन सों लीन।
देव सभा सी सोभिजै रायप्रबीन प्रवीन ॥ 45
सत्या रायप्रवीन जुत, सुरतरु सुरतरु गेह।
इन्द्रजीत तासों बँधे, 'केसवदास' हि देह ॥ 46

नरी किन्नरी आसुरीं, सुरि रहति सिर नाइ।
नवरस नवधाभगति स्यों जोजति नवरंगराइ॥ 46

केशवदास ने 'रायप्रवीण' से ही परिचय आरम्भ किया और तदनन्तर 'नवरंग राय', 'विचित्रनयना', 'ललितलोचना', 'तानतरंग' और 'रंगराय' का प्रत्येक की विशेषता बताते हुए उल्लेख किया। इन्द्रजीत भी प्रवीणराय की ओर विशेष आकृष्ट थे। यही नहीं, उनका सम्वन्ध दाम्पत्य-भाव की कोटि में पहुँच चुका था। वह उनके जीवन में वैसी ही स्थिति रखती थी जैसी सत्यभामा की कृष्ण की द्वारकापुरी में थी अर्थात् उसका स्थान पटरानी तुल्य था। ओरछा का 'आनन्द-महल' प्रवीणराय के लिए ही इन्द्रजीत द्वारा निर्मित कराया गया था, ऐसा वहाँ प्रसिद्ध है। इस महल में अनेक सुन्दर चित्र अंकित हैं, जिनमें नर्तन, वादन और गायन की विविध मुद्राएँ प्रदर्शित हैं। उनसे प्रवीणराय की संगीतप्रियता प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है। वह कुशल नर्तकी होने के अतिरिक्त कला साधिका एवं भावमयी कवयित्री भी थी, इसका संकेत करते हुए केशव ने उसे औरों से भिन्न बताया है।उसके इस गुण के कारण केशव उसकी ओर और अधिक उन्मुख हुए और कहा जाता है कि प्रवीणराय के आग्रह पर तथा इन्द्रजीत की सहमति से उन्होंने उसे अपनी शिष्यता प्रदान कर दी थी—

नाचति गावति पढ़ति सब, सबै बजावति वीन।
तिन में करति कवित्त इक, रायप्रवीण प्रवीन॥ 56

इस रायप्रवीण की प्रवीणता के आगे प्रवीण-अप्रवीण कोई ठहर नहीं पाता था। केशव इसकी प्रतिभा और रूप-सौन्दर्य दोनों की एकान्वित महिमा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने रायप्रवीण की तुलना त्रिदेव-पत्नियों से कर डाली।

केशवदास ने स्पष्ट कर दिया कि रायप्रवीण न केवल, 'षट पातुरों' में सर्वश्रेष्ठ तथा देवांगनाओं से तुलनीय थी वरन् उसके चित्त में कविता का परम प्रकाश विकीर्ण हो रहा है, जिससे प्रेरित होकर प्रवीणराय के निमित्त ही उन्होंने 'कविप्रिया' की रचना की—

सविता जू कविता दई ता कहँ परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया कीन्हीं केशवदास॥ 61

नन्ददास अपने 'एक मीत' का सांकेतिक उल्लेख ही कर सके पर केशवदास ने इतना नैतिक साहस दिखाया कि अपनी काव्य-प्रेरणा के स्रोत का स्पष्ट उद्घोष कर दिया। अवश्य ही वे उसके काव्य-गुरु रहे होंगे और 'कविप्रिया' एक कवि-शिक्षा-ग्रन्थ के रूप में रची गयी होगी। 'कविप्रिया' में एक जगह और उन्होंने उसे सरस्वती का प्रत्यक्ष रूप बताया है, यथा—

केसौदास देवी कोऊ देखी तुम नाहीं राज।
प्रगट प्रवीनराइ जू को यह बानी है। (छन्द सं० 82)

ग्रन्थ की विषय-वस्तु को देखने से ही ऐसा प्रमाणित होता है तथा अनेक विशेषज्ञों ने भी इसी प्रकार की धारणा व्यक्त की है। जिस कवि-नर्तकी को केशवदास ने इतना गौरव दिया, उसका वास्तविक व्यक्तित्व कैसा अद्‌भुत रहा होगा—इसकी कल्पना की जा सकती है।

लोक-प्रसिद्धि का निर्वाह करते हुए 'इन्द्रजीत' और 'प्रवीणराय' अथवा 'रायप्रवीन' छाप से पाये जानेवाले अनेक छन्दों का भी सार्थक उपयोग किया गया है। रायप्रवीण के निम्नलिखित छन्द उल्लेखनीय हैं। शाहंशाह अकबर द्वारा एक करोड़ रुपये के जुर्माने के साथ उसके डोले की माँग की जाने से उत्पन्न विषम परिस्थिति का एक मार्मिक सवैया इस प्रकार है—

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हैं निज साँसन मैं सिगरी मति खोई।
देह तजौं कि तजौं कुलकानि, हिये न लजौं, लजिहै सब कोई।
स्वारथ औ परमारथ को पथ, चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता, अरू मोर पतिव्रत भंग न होई॥

वेश्या या पातुर होकर भी राजा इन्द्रजीत के प्रति उसका भाव परिणीता सधवा स्त्री का ही था, ऐसा इस कथन से सिद्ध होता है। आत्महत्या की अन्तिम स्थिति में पहुँच कर भी, जिसने अपनी मनोभावनाओं को सुचिन्तित सांस्कृतिक स्तर पर इस तरह व्यक्त किया हो, उसका व्यक्तित्व निश्चय ही केशवदास की आशंसा के अनुरूप रहा होगा। अन्ततः उसे अकबर के समक्ष जाना ही पड़ा और काव्यगुरु एवं अभिभावक की तरह केशवदास को भी उसका साथ देना ही पड़ा। वहाँ केशव के आशंसापूर्ण प्रयत्न और बीरबल की युक्तियुक्त सहायता से जुर्माना माफ़ हो गया तथा रायप्रवीण की प्रत्युत्पन्न मति एवं आशु कविता से उसके नारी-धर्म की रक्षा भी हो गयी। जो दोहा निर्भीकतापूर्वक अकबर के समक्ष उसने देश के उस जैसे प्रतापी सम्राट को भी निरुत्तर कर दिया, वह इस प्रकार है :—

बिनती रायप्रवीन की सुनिये साह सुजान।
जूठी पातर भखत हैं, बारी बायस स्वान॥

इसमें व्यंग्य की तीक्ष्णता और उभर जाती है, जब ध्यान 'पातर' और 'पातुर' के स्वर-साम्य पर भी जाता है। इसमें एक-एक शब्द सार्थक और साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। प्रवीणराय के साहस और काव्य-चातुर्य के साथ अकबर की गुण ग्राहकता एवं उदारता भी इस प्रसंग में अवश्य सराहनीय है। क्षीण आधार होने पर भी पूरा प्रसंग केवल कल्पित या किंवदन्ती मात्र प्रतीत नहीं होता। उसमें वास्तविकता का रूप स्पष्ट झलकता है और रायप्रवीण के व्यक्तित्व की वह असाधारणता भी प्रमाणित होती है, जिसने केशव को **'कविप्रिया'** लिखने की प्रेरणा दी। प्रवीणराय के प्राप्त पद्यों में अलंकार-चमत्कार, शब्द-सौन्दर्य के साथ भाव-गरिमा प्रायः सर्वत्र मिलती है। यथा—

ऊँचे ह्वै सुरवस कियो सम ह्वै नर बस कीन।
अब पताल बस करन को ढुरकि पयानो लीन।।
कमल, कोक, श्रीफल, मँजीर, कलधौत-कलस, हर।
उच्च, मिलन अतिकठिन, दमक बहु, स्वल्प नील-धर।।
सरवर, सरिवन, हेम, मेरू कैलास प्रकासन।
निसि, बासर, तरूबरहिं, काँस, कुन्दन, दृढ़ आसन।।
इमि कहि 'प्रविन' जल थल अपक अविधि मजित सिव गरलधर।
कल सुलित उरग, उलटे, सलिल, इंदु-सीस इमि उरज पर।।

इन पद्यों में वक्षस्थल के सौन्दर्य-निरूपण में निसंकोच सभी प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध उपमानों को उक्तिवैचिश्र्य एवं कुशलता के साथ संग्रथित किया गया है। इसी प्रकार, आगमिष्यत-पतिका नायिका का यह उदाहरण भी अनुपेक्षणीय है—

सीतल समीर ढार, मंजन कै घनसार,
अमल अँगौछे आछे मन से सुधारि हौं।
दैहों न पलक एक लागन पलक भर,
मिलि अभिराम आघी तपनि उतारिहौं।
कहत 'प्रवीनराय' आपनी न ठौर पाय,
सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारिहौं।
जब ह्रीं मिलैंगे मोहि इन्द्रजीत प्रान-प्यारे,
दाहिनो नयन मूँदि तोही सौं निहारिहौं।।

इस छन्द से भी रायप्रवीण के इन्द्रजीत के प्रति विशेष अनुरक्त होने की सम्पुष्टि होती है और केशवदास की दी हुई काव्य-शिक्षा की वानगी भी मिल जाती है।

कहते हैं, केशवदास ने प्रवीणराय को ही नहीं इन्द्रजीत को भी काव्य रचने की प्रेरणा दी थी और उनका उपनाम 'धीरज नरिंद' केशव का ही दिया हुआ है। यह शब्द-युग्म इन्द्रजीत और प्रवीणराय दोनों की निकटता का प्रतीक बना और कविता में सार्थक रूप से प्रयुक्त भी हुआ है। यथा—

कुक्कुट को कोटि-कोटि कोठरी किवार राखौं,
धुनि दै चिरैयन को मूँदि राखौ जलियो।
सारंग से सारंग मिलाप हो 'प्रवीनराय'
सारंग दे, सारंग की जोति करौं थलियो।
तारापति तुमसौं कहत कर जोरि-जोरि
भोर मति करियो, सरोज मुंदि कलियो।
मोंहि मिलौ इन्द्रजीत धीरज नरिंद राज,
ऐहो चन्द आज नेकु मंद गति चलियो।

सम्पादन-क्रम में टीका करते हुए दीन जी ने इस बात की सम्भावना सकारण प्रकट की है कि **'रामचंद्रिका'** में समाहित **'सप्त-छंदमय गारी'** केशवदास की लिखी न होकर रायप्रवीण की लिखी है, जिसे कवि ने अपनी कृति में आत्मीय-भाव से समाविष्ट कर लिया है।*

किन्तु दीन जी ने अपने द्वारा सम्पादित पाठ में इन्हें संख्या क्रम देकर ही प्रस्तुत किया है। सम्भवत: वे यह मानने की मन:स्थिति में आ गये होंगे कि जब केशवदास ने इन्हें अपना लिया तो वे क्यों बाधक बनें। केशवदास और रायप्रवीण के सम्बन्ध की प्रगाढ़ अभिन्नता का यह एक विचित्र काव्यात्मक प्रमाण कहा जा सकता है।

इस सम्बन्ध में शोध-दृष्टि अपनाकर और भी प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। वस्तुत: केशवदास और प्रवीण राय का पारस्परिक सह-भाव गुरु-शिष्य के रूक्ष सम्बन्ध से अधिक गहरा, मधुर और विशेष सरस दिखायी देता है।

---

* ऐसी किम्वदन्ती है कि यह **'सप्त छन्दमय गारी'** केशव ने अपनी शिष्या प्रवीणराय पातुर से बनवाकर निज ग्रन्थ में रखी है। इन सात छन्दों में केशव ने अपना उपनाम नहीं रखा है। 30 से 36 तक एक ही छन्द है। ऐसा करना केशव की प्रकृति के विरुद्ध है। अत: किम्वदन्ती में कुछ सत्यता अवश्य है।

—**रामचन्द्रिका**, पूर्वार्द्ध, प्र० 88

# केशव के काव्य में भाव-सौन्दर्य एवं उक्ति-वैचित्र्य

सहज स्फुरित स्वच्छन्द स्वभाव वाली कविता से शास्त्रानुसारी पाण्डित्य-प्रदर्शनमयी कविता की प्रकृति पर्याप्त भिन्न होती है। पहली स्थिति में कवि भावों तथा सौन्दर्य विधायक अलंकरणों का प्रयोग सहज रीति से बिना उनके नाम-रूप के प्रति सजग हुए, इस प्रकार करता है कि उसे वस्तु और शिल्प का अन्तर प्रतिभासित ही नहीं होता। परन्तु शास्त्रीय चेतना से लिखी गयी कविता में कवि निरन्तर अपने कवि-कर्म के प्रति जागरूक रहता है। वस्तु तथा शिल्प दोनों के विषय में उसकी निश्चित धारणाएँ बन जाती हैं। एक ओर वह परम्परा तथा कवि-समयों से अनुशासित होने में गौरव का अनुभव करता है तथा दूसरी ओर उसके मन में अपने शिल्प-कौशल एवं उक्ति-वैचित्र्य के प्रदर्शन की भी ललक रहती है। कवि-शिक्षा को वह अपना धर्म समझता है तथा औरों को शिक्षित करना अपना कर्म। केशवदास इसी दूसरी कोटि के कवि थे। उनकी कविता की प्रकृति को सही रूप में समझने के लिए यही दृष्टि अपनाना उचित है।

कविता का क्षेत्र इतना विशद और रूप इतना जटिल एवं विविधात्मक होता है कि उसे खानों में बाँटकर प्रस्तुत करना कृत्रिम लगता है और सम्भव भी नहीं हो पाता। स्वच्छन्दतावादी तथा शास्त्रीयतावादी ढंग के विभाजन भी इससे ऊपर थोपे नहीं जा सकते। दोनों प्रवृत्तियों की संधि, सामंजस्य एवं संश्लेषण के भी प्रभूत उदाहरण मिलते हैं। केशव के काव्य में ऐसे अनेक तत्त्व हैं, जो उनकी स्वच्छन्दता के परिचायक हैं और भावोन्मेष के पोषक भी। पर अधिकतर उनकी रुझान शास्त्रबद्धता की ही ओर दिखायी देती है। इसमें उनकी पौराणिकता एवं संस्कृतज्ञता भी सहायक हुई है। मिथकों, कवि-समयों तथा वर्णकों से केशव का काव्य-संसार आद्यन्त आपूरित है। उसमें प्रतीकात्मकता एवं बिम्बात्मकता भी समाहित है और भावमयता भी। पर अपने काव्य में वे सबसे अधिक उक्ति-वैचित्र्य के प्रति अनुरक्त दिखायी देते हैं। यह उनकी शक्ति भी है और सीमा भी। रसोक्ति, स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति, उक्ति के ये तीनों प्रकार उनके काव्य में लक्षित होते हैं।

## रसपूर्ण उक्तियों की मार्मिकता

**'रसिकप्रिया'** रसोक्तियों का भण्डार है। प्रारम्भिक रचना होते हुए भी मार्मिकता

की दृष्टि से इसका असाधारण महत्त्व है। 'कविप्रिया' में भी भाव-सौन्दर्य की उत्कृष्टता पर्याप्त मात्रा में मिलती है पर 'रसिकप्रिया' से अधिक नहीं। उसमें रसेतर विषयों के समावेश के कारण भिन्न प्रकार का वैशिष्ट्य लक्षित होता है। इन दोनों रचनाओं के बाद 'नखशिख एव 'शिखनख' तथा 'बारहमासा' में भी प्रचुर भावमयता मिलती है, जो केशव के ऊपर लगाये गये 'हृदय-हीनता' के आरोप को स्वतः खण्डित करती है। रामचन्द्रिका की स्थिति मिली-जुली है। उसमें रसात्मकता भी है और मन को विरस बनानेवाले प्रसंगों का समावेश भी। केवल उसी को आधार मानकर केशव के काव्य का मूल्यांकन करना उचित नहीं। ऐसा कार्य बहुधा भ्रामकता उत्पन्न करता रहा है, जिसका अनेक प्रकार से प्रतिवाद भी किया गया है। केशव का कवि-मन निरन्तर उर्वरता का अनुभव करता रहता था, किन्तु उनकी काव्य-प्रतिभा उसका पूरा साथ नहीं दे पाती थी। जहाँ दोनों का सघन सामंजस्य घटित हुआ है, वहाँ इतनी उत्कृष्टता मिलती है कि आश्चर्य होता है। राधा का भाव और रूप दोनों प्रकार से जैसा परस्परस्पर्धी व्यक्तित्व उन्होंने अंकित किया है, वह विद्यापति और सूर के बाद अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखता है। एक आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित होकर वह मतिराम, देव, पद्माकर और रत्नाकर आदि रीति-परम्परा के सभी प्रमुख कवियों को सतत् प्रभावित करता रहा। और आज भी उसका वैशिष्ट्य समाप्त नहीं हुआ है। कृष्ण के व्यक्तित्व को भी केशव ने बहुत दूर तक राधा का पूरक—प्रतिरूप बनाकर प्रस्तुत किया है। पर सामान्य लौकिक नायक से जहाँ उसका तादात्म्य हो गया है, वहाँ उसमें दुर्बलता आ गयी है। नवरसमय रूप में राधा और कृष्ण दोनों को निरूपित करने के आग्रह ने भी केशवदास से बहुत कुछ ऐसा लिखा लिया; जो सहज रूप से इन उपास्य देवों के साथ सम्बद्ध नहीं किया जाता था। प्रश्न शृंगारिकता और अश्लीलता का ही नहीं है, संगति और असंगति के विवेक का भी है, जिसमें केशव बहुधा चूक जाते हैं। तथापि उनकी बहुत-सी रसमयी उक्तियाँ अविस्मरणीय लगती हैं। कुछ तो ऐसी भी है, जिन पर सही ढंग से समीक्षकों का ध्यान अभी तक नहीं गया क्योंकि प्रायः कुछ विशेष छंदों को लेकर ही उनमें ऊहापोह बना रहा।

राधा-भाव सम्बन्धी कुछ छंद विशेष द्रष्टव्य हैं। पूर्वराग की परिपक्वता ने राधा के तन और मन दोनों को इतना प्रभावित कर लिया कि सखियों को चिन्ता होने लगी—

> ऐसे ही क्यों चुप है रहिहौं सखि, हौं सहिहौं सतराहट सौ लों।
> क्यों सरिहै मिलिवे बिनु तोहि तउ, मिलियै मिलियै दिन जौ लों।
> केसव कोरि करौ उपचार, मिले को कहा मिलिहै सुख तौ लों।
> देखि धौं अंगनि आरसी लै, मिलिहै पिय सौं मन ही मन कौ लों।।4

इसमें *मानसिक मिलन की पूर्णता और अपूर्णता* दोनों की *व्यंजना कुशलतापूर्वक* की गयी है। सखियों के सहयोग से अन्ततः वन में दोनों का ऐहिक मिलन भी घटित होता है। कवि ने अपनी कल्पना का असाधारण वैभव वैचित्र्य पूर्ण अद्भुत योजना और ज्योतिषमूलक रंगमयता के साथ ऐसे रूप में प्रस्तुत किया है जिसका प्रभाव बिहारी आदि अनेक कवियों पर पड़ा—

बन में वृषभानु, कुमारि मुरारि रमैं रुचि सों रस-रूप पियें।
कल कूजत पूजत काम-कला विपरीत रची रति केलि कियें।
मनि सोभित स्याम जराइ जरी अति चौकी चलै चल चारुहियें।
मखतूल के झूल झुलावत 'केशव' भानु मनों सनि अंक लियें ॥120

'प्रच्छन्न संयोग श्रृंगार' का यह उदाहरण विपरीत रति के वर्णन के कारण अशोभन या अश्लील नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक तो यह दम्पति-भाव के साथ प्रगाढ़-प्रेम की भूमिका पर प्रतिष्ठित है, दूसरे कवि ने इसमें सौन्दर्य-दर्शन ही अभीष्ट माना है। यह श्रृंगारिक वर्णन न तो स्थूल है और न विकृति मूलक। दैहिक भूमि पर प्रेम का अवतरण भारतीय परम्परा में कभी अवांछित नहीं माना गया है। सूफ़ियों तक ने उसका विस्तार से निरूपण किया है। जिन रीति कवियों का सौन्दर्य-बोध शिथिल एवं भावोन्मेष अपरिपक्व रहा है, उनके श्रृंगारिक वर्णन अवश्य अवांछित और निष्प्रेरक लगते हैं। केशव के साथ ऐसी बात नहीं है। फिर इस छन्द में श्रृंगार की भूमिका में वात्सल्य को उतार कर कवि ने विशेष साहस का परिचय दिया है। मध्यकाल में राम-कथा और कृष्ण-कथा की आन्तरिक भावधारा इतनी एकात्म हो चुकी थी कि सूर-तुलसी आदि ने ही नहीं, केशव ने भी उसे कहीं-कहीं समन्वित रूप में वर्णित किया है। **रसिकप्रिया** का प्रकाश—संयोग के उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत यह छन्द भी कम मनोहर एवं अविस्मरणीय नहीं है—

केशव एक समै हरि-राधिका आसन एक लसैं रंग भीनें।
आनन्द सों तिय-आनन की दुति देखत दर्पन में दृग दीनें।
भाल के लाल में बाल बिलोकि, तहीं भरि लालन लोचन लीनें।
सासन पीय सवासन सीय हुतासन में जनु आसन कीनें ॥22

यहाँ राधा-कृष्ण वन-विहार से भिन्न नितान्त राजसी वातावरण में प्रेमलीन-चित्रित किये गये हैं। इस छन्द की सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि कृष्ण अपने रामावतार के अग्नि-परीक्षा प्रसंग की बिम्बात्मक स्मृति से अभिभूत होकर सजलनेत्र हो उठते हैं। इन्हें राधा के मस्तक पर सुशोभित लालमणि में वह नारी-छवि आभासित होती है, जो सामने कुण्ड के दर्पण में उसी का प्रतिबिम्ब है। लाल अग्निकुण्ड में परीक्षा के लिए प्रवेश करती हुई सुसज्जित एवं सुभूषित सीता के रूप में देखकर कृष्ण तत्काल विचलित हो उठते हैं। अप्रस्तुत विधान

की ऐसी अद्‌भुत-योजना अन्य किसी कवि में नहीं मिलती। केवल सूर ने कृष्ण की बाल-लीलाओं के वर्णन में एक जगह यशोदा द्वारा राम-कथा सुनते हुए सीता हरण का प्रसंग आने पर "चाप···चाप" कह उठने का वर्णन किया है, जिससे राम-कृष्ण की तात्त्विक एकता प्रमाणित होती है और कथा-वैचित्र्य एवं लीला-रस का भी अनुभव होता है।

राधा का स्वभाव नितान्त भोला और कृष्ण का उतना ही चातुर्यमय चित्रित करके कवियों ने वैचित्र्य की सृष्टि की है। कहीं-कहीं स्थिति इसके विपरीत भी प्रदर्शित की गयी है। केशव के छन्द के अन्त में सखी राधा से पूछती है कि जब तुम ऊपर से नीचे तक सिधाई की मूरत हो तो यह बताओ कि ऐसे टेढ़े कृष्ण को कैसे वशीभूत कर लिया—सूधे सुभाइ सबै सजनी बस कैसे किये अति टेढ़े कन्हाई,

कृष्ण के इसी बाँकेपन को लेकर बिहारी ने अनेक उक्तियों की सृष्टि अपनी 'सतसई' में की है पर उनकी राधा केशव की राधा की तरह सीधी-सादी ग्राम-तरुणी न होकर नागरी बन गयी है। अन्यत्र केशव ने राधा के चातुर्य का भी वर्णन किया है और इसका श्रेय भी बिहारी से अधिक केशव को है। वह अपना रूप-जाल फैलाकर कृष्ण को वन में अपहृत कर ले जाती है।

**बन में वृषभानुसुता**
**सुलहीं हरि को हरि लै गई हेलहिं हेली।'**

वहाँ जाकर फिर भोलापन धारण कर लेती है—

**आँखिन मूँदि कै सीखति राधिका कुंजनि तें प्रतिकुंजनि जैबो ॥**

राधा कृष्ण के बीच सांकेतिक प्रेम-संवाद चलता है और उसमें कमल जैसे प्रतीकों का आदान-प्रदान भी होता है। उसमें दोनों ही एक दूसरे से अधिक समझदार और चतुर प्रतीत होते हैं। गोप-सभा में बैठे हुए कृष्ण के पास सजल-कमल के रूप में राधा प्रेम-सन्देश भेजती है। कृष्ण उस अधोमुख कमल को कलिका का रूप देकर वापस कर देते हैं। जिसका आशय है, सायंकाल सूर्यास्त के समय सरोवर के तट पर भेंट करना। वे सजल-कमल में राधा के व्यथाकुल नेत्रों का आभास पाकर उसकी विरह-व्यथा का निदान मिलन-प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। यथा—

सखि गोकुल गोप-सभा महँ गोविन्द बैठे हुते दुति कौं धरि कै।
जनु 'केसव' पूरनचन्द लसै चित चारु चकोरनि कोहरि कै।
तिनकों उलटो करि आनि दियो किहुँ नीरज नैन नएँ भरि कै।
कहि कहि तें नेंक निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करि कै ।।

कालिदास ने मेघदूत में यक्षिणी का वर्णन करते हुए "हस्तेलीलाकमलम्" का उल्लेख किया है। यही कमल शताब्दियों का अन्तराल पार करता हुआ राधा के हाथ में आ गया। बीच में मूर्तिकला और चित्रकला के अनगिनत उदाहरणों

में इसका अस्तित्व प्रवाह की अखण्डता सिद्ध करता है। कमल भारतीय सौन्दर्य-बोध का केन्द्रीय प्रतीक रहा है। राधा जब कमल सूँघती है तो केशव के कृष्ण को लगता है मानो वह उनका हृदय ही सूँघ रही है—

**'मेरे ही मानो हिये कहा सूँघति यों अरविन्द दियें मुख ढाढ़ी।'**

रसिकप्रिया में अन्यत्र भी "लै कुम्हिलानो सो कुन्ज" आदि का उल्लेख मिलता है। रत्नाकर ने अपने **उद्धव-शतक** के आरम्भ में इसी की प्रेरणा से लिखा—

न्हात जमुना में जलजात एक देख्यो जात
जाको अध ऊरध अधिक मुरझायो है।

राधा के विरह-तप्त हाथों से उसका अधोभाग और उष्णश्वासों से ऊर्ध्व भाग अधिक मुरझाया हुआ है। यह सूक्ष्मता उन्होंने अपनी ओर से समाहित कर दी है परन्तु है वही लीला-कमल, जो कालिदास से चलकर केशव तक आया। इस परम्परा के सम्यक् ज्ञान के अभाव में भारतीय काव्य को समझना दुष्कर है; चाहे वह प्राचीन हो या मध्यकालीन अथवा आधुनिक युग तक चली आनेवाली परम्परा से सम्बन्ध नवीन।

झरोखों से झाँकती राधा का अद्भुत रूप देखकर विह्वल हुए कृष्ण की दशा का वर्णन करने के लिए 'सुपारी लगना' जैसी कल्पना केशव की निजी उद्भावना लगती है पर राधा-कृष्ण के युगल रूप को "नैननि की जोरी" कहना इतना सटीक लगा कि बिहारी आदि अनेक कवियों ने उसको आत्मसात् कर लिया।

## स्वभावोक्तियों का सौन्दर्य

यद्यपि स्वभावोक्ति को केशव की वक्रतामूलक अलंकारवादी प्रवृत्ति ने विशेष महत्ता नहीं दी है तथापि कवि-स्वभाव के कारण उन्होंने स्वाभाविकता में भी सौन्दर्य दर्शन किया है। उनका नायिका के विषय में सखी से यह कहलाना कि तेरा शरीर तो स्वभावतः सुन्दर है, शृंगार करके उसे बिगाड़ती क्यों है, इसी प्रकार की सौन्दर्य दृष्टि का परिचायक है।

काहे को सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग सहल सिंगार हो सिंगार है।

गोप और गोपबालाओं की स्वाभाविक शब्दावली तथा चेष्टा का भी केशव ने अपनी कविता में यत्र-तत्र समावेश किया है। **'ए हो गुपाल मैं ऐसे कह्यो'** में 'हो' भाषा-प्रयोग की स्वाभाविकता व्यक्त करता है। जब कृष्ण को नारी वेश में राधा के सामने लाया जाता है और राधा अपने अबोधपन में सही स्थिति न समझकर सखी की तरह उनसे भेंटती है तो केशव लिखते हैं—**'हँसी सब कीक दै गोप कुमारी।'** यह 'कीक' और उससे व्यंजित होनेवाली चेष्टा दोनों स्वाभाविकता के कारण ही सुन्दर लगती हैं। जिसे केशव ने रसहीन नग्न वर्णन

के रूप में प्रस्तुत कियाहै। उस छन्द के अन्तिम अंश में स्वभावोक्ति की प्रतीति होती है और बार-बार उसके सौन्दर्य पर ध्यान जाता है—

केसव चुक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी।
कै फिरि चूमन दै मुख मोंहि कै आपनी धाय सौं जाय कहौंगी।

अपनी दाई से शिकायत कर देने की धमकी देकर नायक को चुम्बन के लिए प्रेरित एवं विवश करना अस्वाभाविक कैसे कहा जा सकता है ? वह तो लीला-भाव की रमणीयता व्यंजित करता है अत: सुन्दर भी है।

पशु-पक्षी और वन्य प्रकृति तथा सेना-प्रयाण आदि के विषय में भी केशव ने स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसे काव्य में समाविष्ट किया है। चंचल घोड़ों के खूंद करने तथा मदोन्मत्त हाथियों के चिंघाड़ने आदि का वर्णन भी केशव ने किया है। कहीं-कहीं अप्रस्तुत-विधान में भी पशु-चेष्टा समाहित की गयी है पर साहसिकता युक्त होने पर भी वह सुन्दर नहीं बन सकी है। यथा—

चढ़यो गगन तरु धाय दिनकर बान अरुन-मुख।
दीन्हयो झुकि झहराय, सकल तारका-कुसुम बिनु।।

सूर्य को बन्दर से उपमित करना, अरुण-मुख का सादृश्य दिखाना, फूल गिराने और तारकों के विलीन हो जाने में साम्य देखना केशव के कल्पना वैचित्र्य का अद्वितीय उदाहरण है। किन्तु स्वभाव-केन्द्रित होने पर भी उसे सहज रूप से ग्रहण करना काव्य-समीक्षकों के लिए सम्भव न हो सका। **रामचन्द्रिका** में ऐसे और भी वर्णन मिलते हैं, जो मानसिकतया पूरी तरह ग्राह्य नहीं हो पाते। राम के द्वारा कौशल्या को विधवा-धर्म का उपदेश अस्वाभाविकता की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ लगता है। वस्तुत: केशव का मन स्वभावोक्तियों से कहीं अधिक वक्रोक्तियों एवं व्यंग्योक्तियों में रमता दिखायी देता है।

## वक्रोक्तियों की प्रखरता

केशव के संवादों में वक्रोक्तियों का प्रखर स्वरूप विशेषत: निखरा है। राम-परशुराम सम्वाद तो प्रसिद्ध ही है पर अंगद-रावण-संवाद में भी पर्याप्त व्यंग्य-मयता मिलती है। यथा—

**रावण**—कौरन है वह बाँधि कै हम देह पूँछ सबै दही।
**अंगद**—लंक जारि संघारि अच्छ गयो सो बात वृथा कही।।
कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि न जानिये।
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये।।

कहीं-कहीं उपमा के द्वारा हीनता व्यंजित की गयी है। **रामचन्द्रिका** के अन्त में रावण अंगद से कहते हैं—**बानिनि बेधि रही सब देही। बानर ते जु भये अब सेही।**

सेही या साही के काँटे सुप्रसिद्ध हैं। इतने वाण वानर शरीर में चुभे कि वह साही का शरीर लगने लगा—यह कल्पना सचमुच विचित्र, किन्तु सराहनीय है।

राम के राज्य का वर्णन करने में केशव ने परिसंख्या अलंकार का विशद प्रयोग किया है, जो वक्रोक्ति-विधान के ही अन्तर्गत आता है।

बैरी गाइ-ब्राह्मन को ग्रन्थेन में सुनियत,
कबिकुल हीके मतवारे को सो साज है।
गुरुसेजगामी एक बाल कै विलोकियत,
मातंगन ही के मतवारे को सो साज है।
असिगरीन प्रति होत है अगम्यागौन,
दुर्गनहिं 'केसोदास' दुगति सी आज है।
देवताई देखियत गढ़न गढ़ोई, जीवौ—
चिर-चिर रामचन्द्र जाको ऐसो राज है।

केशवदास को अपनी जो उक्तियाँ स्वयं बहुत प्रिय लगती थीं, उनको उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में समाविष्ट किया है। **कविप्रिया** के अनेक छन्द **रामचन्द्रिका** में भी मिलते हैं। ऐसी ही स्थिति अन्य ग्रन्थों की भी है।

# केशव की मौलिकता और प्रयोगशीलता

मौलिकता, और प्रयोगशीलता पर आधुनिक युग में जितना बल दिया जाता है, प्राचीन एवं मध्यकालीन युगों में उतना बल नहीं दिया जाता रहा। इनका महत्त्व फिर भी मान्य था क्योंकि नवीनता को भारतीय काव्य चिन्तन में सदैव विशेष स्थान दिया गया है। प्रतिभा की परिभाषा में ही नहीं, नवनवोन्मेपशालिनी प्रज्ञा का समावेश मिलता है और रमणीयता का रूप भी। प्रतिक्षण नवतामुपेति के लक्षण से युक्त माना गया है। परम्परा को नवता के विरोध में रखकर देखना सही नहीं है क्योंकि जो परम्परा सजीव होती है उससे जुड़ना श्रेयस्कर ही होता है। रूढ़ि-ग्रस्त निर्जीव परम्परा अवश्य कवि-कर्म को कुंठित करती है। ऊँचे स्तर के कवि उससे कभी प्रेरित नहीं होते। कुछ कवि मध्यमार्गी भी होते हैं, जो अनेक काव्य-रूढ़ियों को कवि-शिक्षा और कवि-समय का अंग मान कर अल्पज्ञ कवियों को शिक्षित करने के लिए अपने एतद्विषयक शास्त्र-ग्रन्थों में उनका समावेश करते हैं तथा काव्य-रचना में स्वयं उनके प्रति सजगता रखते हुए अपनी सृजन-धर्मिता का प्रकाश करते हैं। केशव इसी कोटि के कवि आचार्य हैं। संस्कृत में राजशेखर आदि कवि शिक्षक आचार्यों ने जो महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया, हिन्दी में केशव उसी के अग्रणी सिद्ध हुए। उनसे पहले के हिन्दी आचार्य-कवियों की प्रतिभा उनके आगे मन्द पड़ गयी और बाद के आचार्यों में भी व्यक्तित्व की अद्वितीयता और प्रौढ़ता की दृष्टि से कोई उनसे श्रेष्ठतर सिद्ध नहीं हुआ यद्यपि कार्य की विशदता, सूक्ष्मता तथा प्रामाणिकता की दृष्टि से अनेक कवि-आचार्य कहीं-कहीं उनके समकक्ष ही नहीं वरन् उनसे उत्कृष्टतर भी प्रतीत होते हैं। किन्तु उन सबने भी केशवदास से प्रेरणा ग्रहण की है, इसमें सन्देह नहीं। केशव ने एक प्रकार से उनके लिए काव्य-शास्त्र की दिशा का उद्घाटन कर दिया और काव्य-रचना के लिए एक नये क्षेत्र की विशाल सम्भावना उत्पन्न कर दी। इस कारण उनका कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण और स्मरणीय हो गया। उनकी मौलिकता का यह सबसे बड़ा आधार है।

तत्त्वतः मौलिकता शब्द द्वयाशयी है। उसका एक आशय है, मूल-सम्पृक्त और दूसरा अभूतपूर्व। मौलिकता शब्द 'मूल' से बना है। लाक्षणिकता के संयोग से इसका अर्थ होता है, उर्वरता अथवा निरन्तर सृजनशीलता। अनुकरण से भिन्न सृजन एक ऐसा प्रत्यय है, जो कला और कविता को एक असाधारण

वैशिष्ट्य प्रदान करता है। अंग्रेजी का 'वैल्यू' शब्द 'ओरिजिन' से सम्बद्ध नहीं है पर हिन्दी में मूल्य भी मूल से ही व्युत्पन्न है। साहित्य का मूल्यांकन प्रथमत: उसकी उर्वरा-शक्ति से किया जाता है फिर प्रभाव और प्रेषणीयता तथा लोक-हित, समाज-परिवर्तन, परम्परा-संरक्षण आदि का विचार सामने आता है। आनन्द और मनोरंजन की स्थिति उससे निरपेक्ष नहीं हो सकती। वैसा मानने पर कलावादी दृष्टि उभरती है, जो भारतीय जन-मानस का कभी सहज समर्थन नहीं पा सकी।

यहाँ भी केशव की स्थिति मिली-जुली है। उनके कृतित्व में मौलिकता का उर्वरतापरक अर्थ भी मिलता है और प्रचलित अभूतपूर्व वस्तु-रचना की क्षमता का अर्थ भी; किन्तु दूसरे अर्थ की अपेक्षा पहला अर्थ ही प्रधान दिखायी देता है। यदि समग्रत: परम्परा-पालन की प्रवृत्ति की समकक्षता में उनकी मौलिकता को रखकर देखा जाय तो उसकी मात्रा और भी कम लगने लगती है। इसीलिए कुल मिलाकर, केशव परम्परावाद के प्रतीक और प्रवर्त्तक होकर ही अधिक सामने आये हैं; उनकी मौलिकता पर या तो समीक्षकों का सम्यक् ध्यान नहीं गया और गया भी तो उसे गौण मान लिया गया। इधर मौलिकता को मुख्यता प्राप्त हो जाने के कारण केशव के काव्य में उसका अन्वेषण और निर्देशन दोनों विशेष महत्त्व रखने लगे हैं। अज्ञेय जैसे आधुनिकता-पोषक कवि ने कभी 'केशव की कवि-ताई' शीर्षक से **त्रिशंकु** नामक अपने प्रारम्भिक लेख-संग्रह में जो संवादात्मक लेख लिखा है, वह टी० एस० एलियट की निर्व्यक्तिकता और 'ट्रेडिशन' के महत्त्व की नूतन स्थापना के सन्दर्भ के साथ इस बदली हुई मानसिकता का भी प्रतीक है। समीक्षा के एक दौर में आलोचकों द्वारा केशव के महत्त्व को नकार दिया गया पर दूसरे दौर में उनकी महत्ता को व्यापक तौर पर स्वीकार किया जाने लगा। अज्ञेयजी ने केशव को 'हिन्दी में काव्य-शास्त्र के निर्माण का अग्रदूत' मानते हुए छन्द-रचना की दिशा में केशव की प्रयोगशीलता की आशंसा की है, यद्यपि उसका परिविस्तार नहीं किया है "और **रामचन्द्रिका** भी चरित काव्य उतना नहीं है, जितना छन्द शास्त्र का खजाना। उतनी तरह के छन्द शायद और किसी कवि ने नहीं लिखे होंगे" (त्रिशंकु, पृ० 97) उन्होंने कहीं-कहीं झलक जानेवाली उनकी व्यंग्य-मयता का भी, उदाहरण देकर सराहना की है—

माखन सी जीभ मुख-कंज-सी कोमलता में
काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति हैं।

पर प्रकृति से 'अज्ञेय' केशवदास को चमत्कारवादी ही मानते हैं, 'केशव ने अच्छा भी लिखा है, घटिया भी लिखा है। पर जो कुछ लिखा है, चमत्कार से भरा हुआ है।' (त्रिशंकु, पृ० 96)

नवीन-उद्भावना और विषयवस्तु की मौलिकता की दृष्टि से **रामचन्द्रिका** का उत्तरार्द्ध और छन्दगत प्रयोगशीलता की दृष्टि से पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

नवीन विषयवस्तु के समावेश तथा वर्णन-वैचित्र्य की दृष्टि से केशव के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा **रामचन्द्रिका** सबसे अधिक मौलिकता-सम्पन्न प्रतीत होती है। उनके कवि-व्यक्तित्व की छाप उस पर स्पष्ट रूप से अंकित हुई है। अलंकार-प्रियता और राजसी वातावरण के साथ पौराणिक राम-भक्ति का निर्वाह इसकी असाधारण विशेषता है। कदाचित् इसीलिए पूर्वार्द्ध से उत्तरार्द्ध अधिक समृद्ध दिखायी देता है, जिसमें राजमहल का पूरा परिवेश समाहित कर लिया गया है। वाल्मीकि और तुलसी ने राम के राजसी रूप की अपेक्षा उनके वनवासी रूप को अधिक गौरवान्वित किया है किन्तु केशव ने राजाश्रय के निजी अनुभव के आधार पर राम के राजसी रूप की गरिमा अधिक बढ़ा दी है। धर्म और राजनीति का समावेश तो उन्होंने अपने अन्य काव्यों में भी किया है।

छन्द प्रयोगों की दृष्टि से भी **रामचन्द्रिका** समस्त हिन्दी साहित्य में अप्रतिम है। असम्भव नहीं कि अन्य भारतीय भाषाओं में ऐसी बहु-विध छन्द-योजना कहीं सुलभ न हो। पूर्ण निश्चय तो वास्तविक शोध से ही किया जा सकता है। केशव ने कुल मिलाकर 121 छन्द रामचन्द्रिका में प्रयुक्त किये हैं। डा. किरण चन्द्र शर्मा ने पूर्व-ज्ञात 82 छन्दों के अतिरिक्त 39 छन्द और खोज लिए। सबकी सूची उन्होंने अपने शोध-ग्रंथ **केशवदास : जीवनी कला और कृतित्व में** (पृ. 195-6 पर) प्रस्तुत कर दी है। एक सौ आठ वर्ण के छन्द तो कवि द्वारा प्रारम्भ में ही प्रस्तुत कर दिये गये हैं। केशव ने संस्कृत परम्परा के प्रभाव से मात्रिक छन्दों की अपेक्षा इसमें वर्णिक छन्दों के प्रति अधिक अभिरुचि प्रदर्शित की है। कुछ ऐसे छन्द भी मिलते हैं, जिनके नाम असाधारण ही नहीं, छन्द-शास्त्रों के लिए भी अपरिचित प्रतीत होते हैं। यथा—"मत्तमातंगलीलाकरण, कुमारललिता, समानिका, तरणिजा आदि। यह नामावली सुविस्तृत, रोचक और आश्चर्योत्पादक है। केशव ने अपना लोहा उस युग के संस्कृत-पण्डितों से भी मनवा लिया होगा, इसमें सन्देह नहीं। 'घत्ता' जैसे प्राचीन छन्द से लेकर 'चौबोला' और 'चौपाई' जैसे लोकप्रिय छन्दों तक उनकी सहज गति थी। सवैया, कवित्त, छप्पय, दोहा, रोला और भुजंगप्रयात आदि तो उन्हें सहज-सिद्ध थे। भले ही, उनके द्वारा प्रयुक्त सभी या अधिकांश छन्द आगे के कवियों ने प्रयुक्त न किये हों पर केशव ने इस क्षेत्र में जो कीर्तिमान स्थापित किया, वह आज भी सुदृढ़ एवं समादृत है।

काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में उन्होंने आधार ग्रंथों के चयन में जितने वैविध्य का परिचय दिया है, वह उनकी मौलिक जिज्ञासा का ही परिचय देता है। यह कहना

सही नहीं है कि उन्होंने अलंकारवादियों के ग्रंथों का ही अवलोकन किया। इधर के शोधकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि केशव ने **साहित्य दर्पण** और **काव्य-प्रकाश** से भी बहुत कुछ ग्रहण किया है। **ध्वन्यालोक** आदि का उनको परिचय तक न रहा हो, ऐसा भी नहीं है। यह सब ज्ञान रखते हुए भी वे अलंकारवाद की ओर प्रवृत्त हुए। इसका प्रमुख कारण यही था कि संस्कृत के काव्य-शास्त्रीय विकास क्रम के ही इस दौर में आगे-पीछे जयदेव के **'चन्द्रालोक'** और अप्पय दीक्षित के **'कुवलयानन्द'** जैसे ग्रंथ रचे गये, जो मम्मट के **'काव्यप्रकाश'** की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि भाषा कवि होकर भी केशव इस अलंकारवाद के पक्ष में थे और यह भी कि वे रस के विरोधी होकर ऐसा नहीं कर रहे थे। काम-शास्त्रीय ग्रंथों का आधार लेना भी कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति रही, जो उनके युग से पूर्व संस्कृत के काव्याचार्यों में लक्षित होने लगी थी। केशव ने उसे भी भाषा ग्रंथों में समाविष्ट करने का द्वार खोल दिया। जब गीत-गोविन्दकार जयदेव निर्भीक होकर कृष्ण-भक्ति काव्य के सन्दर्भ में 'विलासकला-सुकुतूहलम्' की बात कह गये तो भाषा-काव्य पर उसकी छाया पड़नी ही थी। रीति-काव्य के अग्रणी होकर केशव उसके भी प्रस्तोता बन गये। इस तरह का हर कार्य प्रभाव प्रेरित होकर भी, भाषा-भेद होने के कारण, साहस और समृद्धि का द्योतक माना जाता है। केशव के साथ भी यही हुआ। दण्डी और आनन्दवर्धन से तुलना करने पर वे छोटे लगते हैं पर चिन्तामणि और मतिराम की तुलना में बड़े ही दिखायी देते हैं। वस्तुतः कृतित्व का मूल्यांकन भाषा की सीमा से ऊपर उठकर किया जाना चाहिए। पर यह बात केशव के साथ ही क्यों, हर कवि के साथ लागू होती है। वस्तुतः मूल्यांकन का एक ऐतिहासिक आधार भी होता है जो कृति, देश, परिवेश, भाषा और काल-विशेष से सम्बन्ध करके ही पहचाना जाता है। काव्य और कलाएँ उससे बँधती नहीं हैं पर उसकी अवज्ञा भी नहीं करतीं। केशव के साहित्यिक अवदान का प्रमुख क्षेत्र काव्य-शास्त्र है, इसमें सन्देह नहीं, पर उसमें भी उनका कवि-व्यक्तित्व ही प्रमुख रहा, यह भी असंदिग्ध है।

उक्त परिप्रेक्ष्य में उनकी मौलिकता का आकलन अपेक्षित है। कृष्ण-भक्ति प्रेरित, ब्रजराज की नवरसमयी कल्पना उनकी निजी उद्‌भावना मानी गयी है। नवरसों के रंग का उल्लेख मूलतः भरत-प्रेरित होकर भी उनके वैष्णव ध्यान-रूप को अधिक प्रकट करता है। नायिका-भेद में प्रेमाभिसारिका की मौलिक कल्पना तथा 'कलहंतरिता' के स्थान पर अभिसंधिता का स्वीकार, सखियों के चतुर्विध कर्म, राधा भाव के कारण सामान्या का परित्याग, मध्याधीरा एवं प्रौढ़ा अधीरा के स्वरचित लक्षण, और इसके साथ-साथ 'बोधक हाव' की प्रेरक धारणा, जिसका अनुवर्तन पद्‌माकर आदि के द्वारा भी किया गया, यह सब ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे केशव का आचार्यत्व विश्वसनीय होता गया। नायक-भेद में भी उन्होंने

'शठनायक' के लक्षण अपनी ओर से दिये हैं तथा दक्षिणनायक की कल्पना में भी कुछ नयापन ला दिया है। 'वर्णालंकार' के अन्तर्गत परिगणित नामों में जो परिवर्धन उन्होंने निजी अनुभव से किये, वे **काव्यकल्पलतावृत्ति** तथा **अलंकार-शेखर** जैसे आधार-ग्रंथों में अनुपलब्ध हैं। श्वेत वर्ण के उदाहरण-स्वरूप सन्त-मन, जनेऊ, ऋषियों की चोटी आदि का समावेश केशव के निजी स्वभाव और जाति-गौरव की भावना का परिचय देता है। अन्य वर्णों के सन्दर्भ में भी प्रायः ऐसी ही स्थिति मिलती है। काले वर्ण को नील से अपृथक् मानने के कारण उसमें नये उदाहरणों की संख्या और अधिक मिलती है। उसमें खल-मन, नरक, रीछ, छल, काम और कलह आदि का स्थान केशव की सांस्कृतिक चेतना और विशद वर्ण-बोध का परिचायक प्रतीत होता है। रक्त वर्ण ने गजमुख और सारस सीस का परिगणन निजी प्रेरणा से किया गया है, जो एकदम सटीक है, और अनुभूत भी। कुछ ही अंश में सही, पर केशव ने काव्य-शास्त्र के भाषा-संग्रथन में रचनात्मक भूमिका निभायी है। इसकी प्रतीति उस युग के कवियों को आज की तुलना में कहीं अधिक हुई होगी, क्योंकि तब उन्हें ऐसे ज्ञान की अदम्य आकांक्षा थी। विशुद्ध-भक्त कवियों के क्षेत्र में यह कार्य आता नहीं था। चित्रालंकार केशव की दृष्टि में समुद्र के समान है यद्यपि देव ने उसे अत्यन्त हेय मानते हुए लिखा—**'चित्रकाव्य जे करत ते बायस चाम चबात'**। केशव अपनी **'कविप्रिया'** के सोलहवें प्रकाश में लिखते हैं कि मैंने उस चित्र समुद्र की बूँद का कण ही प्रस्तुत किया है—

केशव चित्र समुद्र में बूड़त परम विचित्र।<br>
ताके बंदक के कणै बरनत हौं सुनि मित्र॥

इसके अन्तर्गत उन्होंने निरोष्ठ, अमात्रिक, नियमाक्षर के अन्तर्गत एक वर्ण तक की रचना प्रस्तुत की है। यह शब्द-क्रीड़ा का व्यापार भी उनके आचार्यत्व की प्रौढ़ता का ही एक पक्ष है, भले ही चित्र-काव्य अवर काव्य माना गया हो। अमरचन्द्र की **'काव्यकल्पलतावृत्ति'** पर आधारित होकर भी रचनात्मक दृष्टि से ब्रजभाषा में उनका प्रयास नया ही कहा जायेगा। उन्होंने कदाचित् कुछ नये बंधों की उद्भावना भी की है और कतिपय दोष भी नगण्य मान लिये हैं।

यह कहा गया है कि हिन्दी साहित्य में अन्योक्ति का स्वतन्त्र रूप में सबसे प्रथम उल्लेख केशवदास ने ही किया है। यमक, उपमा आदि अनेक प्रसिद्ध अलंकारों के भेदों में भी नवीनता प्रदर्शित की है। इस प्रकार, उनकी मौलिकता का प्रयास काव्य के प्रायः सभी अंगों तक व्याप्त दिखायी देता है।

# केशव की भाषा-दृष्टि

मिश्र-बन्धुओं ने यद्यपि केशव को कवि-रूप में भक्तिकाल के सूर-तुलसी तथा रीति-काल के देव-बिहारी और भूषण के बाद स्थान दिया है तथापि उनके भाषा प्रयोग का लोहा मानते हुए आदेश देते हुए स्पष्ट घोषणा की है कि—'केशव को भाषा का मिल्टन कहना चाहिए।' (हिन्दी-नवरत्न, पृ० 297)

यदि यहाँ भाषा का आशय साहित्य से लिया जाय तो संगत नहीं होगा क्योंकि तब कवि के रूप में एक ओर केशव को इतने नीचे रखना सम्भव नहीं होगा। वस्तुत: यह कथन केशव की भाषा एवं अभिव्यक्ति की जटिलता और शास्त्रीयता को ही उजागर करता है, जिसे इस उक्ति के द्वारा मिश्र बन्धुओं ने गौरव प्रदान किया है।

अपने पंडित कुल की महत्ता प्रदर्शित करते हुए कवि केशव लिखते हैं—

भाषा बोलि न जानई जिनके कुल को दास।
भाषा कवि भो मन्दमति तेहि कुल केशवदास॥ —**कविप्रिया 2/17**

भाषा कवि होने पर जैसा खेद यहाँ केशवदास ने प्रकट किया है, वैसा सैयद गुलाम नबी 'रसलीन' को छोड़कर और किसी हिन्दी कवि ने व्यक्त नहीं किया। 'रसलीन' कहते हैं—

"आवै कहै सुरबानी जबै,
तब भाषा कहा मुख ते कोउ भाषै।"

पर दोनों की मन:स्थितियाँ आन्तरिक रूप से बहुत भिन्न हैं। केशव के कुल में नौकर तक लोक-भाषा का उपयोग नहीं करते थे। उनके घर में केवल संस्कृत का ही व्यवहार होता था। संस्कृत न आने के कारण विवश होकर उन्होंने भाषा का प्रयोग नहीं किया वरन् जन-समाज में संस्कृत के दुर्बोध एवं अप्रचलित हो जाने के कारण, एक ऐसे दायित्व के रूप में उन्होंने भाषा का उपयोग किया, जिसके लिए उन्हें अपने मन को यत्नपूर्वक तैयार करना पड़ा। कालान्तर में, उनका यह उदासीन एवं खिन्न मन भाषा-रस में इतना रीझ गया कि वे अपने मन में उसके प्रति लोलुपता का भी अनुभव करने लगे। यह असाधारण मानसिक परिवर्तन उन्होंने संस्कृत में इस प्रकार निबद्ध किया है—

गीर्वाणवाणीषु विशेष बुद्धिः तथापि भाषारस लोलुपोऽहम्।
यथा सुराणाममृतेषु सत्सु स्वर्गांगनामधरासवे रुचिः॥2॥ शिखनख

उनकी यह उक्ति बड़ी मार्मिक है। संस्कृत अनुशीलन में विशेष बुद्धि होते हुए भाषा-रस के प्रति अपने अतिशय आकर्षण की समता उन्होंने देवताओं की उस रुचि से की है, जो उनके मन में अप्सराओं के अधर-रस के प्रति बनी रहती है; भले ही, स्वर्ग में उन्हें अमृत सदा सुलभ रहे। अमरवाणी को अमृत से और भाषा रस को अधरासव से तुलना करनेवाले कवि को हृदय-हीन कौन कह सकता है? केशव ने एक स्वचरित संस्कृत श्लोक में अपने इष्टदेव श्रीराम के चरणारविन्दों के प्रति आसक्त अपनी मति को सीता को लोचनों की लुब्ध चंचरीकता प्रदान की है—

रामचन्द्रपदपद्मं वृन्दारक वृन्दाभिवन्दीनीयम्।
केशवमति भूतनयालोचनं चंचरीकायते॥

वस्तुतः भाषा-रस समस्त रसों से ऊपर होता है। केशव का बड़प्पन इसमें है कि अन्ततः उन्होंने कुलीनता-जन्य भाषा संस्कार से उपजी हीन-भावना का परित्याग कर, अपना सारा जीवन भाषा-साहित्य की साधना को समर्पित कर दिया। तुलसी की तरह उनका निर्णय भी ऐतिहासिक अनिवार्यता की स्वीकृति से जुड़ा है। पर न तो वह उतना सहज संवेद्य और लोक-प्रवाही नहीं बन सका और न कबीर की तरह संस्कृत को 'कूप-जल' कहने की प्रखरता अपना सका। भाषा के सन्दर्भ में केशव की स्थिति सबसे अलग दिखायी देती है। वह रूढ़ि-ग्रस्त और जड़ न होकर विकासात्मक एवं गतिशील है। तुलसी की तरह उन्होंने भी लोक-भाषा को तत्सम-प्रधान बनाते हुए जायसी और कबीर से भिन्न मार्ग का अनुसरण किया। कहीं-कहीं पूर्वी प्रभाव से युक्त होते हुए भी केशव की भाषा मूलतः और प्रधानतः पश्चिमी प्रकृति की है। ब्रजभाषा के साथ बुन्देली का मेल उनकी और बिहारी की भाषा की एक प्रमुख विशेषता है पर इस सन्दर्भ में वे बिहारी से कुछ आगे ही दिखायी देते हैं। केशव ने स्वयं अपनी भाषा को ब्रजभाषा न कहकर उस समय के प्रचलित मुहावरे के अनुसार केवल 'भाषा' कहा है किन्तु उनकी **रसिकप्रिया** के टीकाकार मुनि समय माणिक्य (उपनाम 'समरथ') ने संवत् 1755 (1698 ई.) में उसे स्पष्टतः 'ब्रजभाषा' नाम दिया है—

'सर्वा सुभाषा सुविशेष रम्या, ब्रजस्य भाषा ललिता सुवाणी।'

उसके लालित्य, माधुर्य और सौन्दर्य को रेखांकित करने के लिए कवि ने इतने विशेषण लगाये हैं कि देखते ही बनता है। केशव के पूर्वोक्त कथन का गुजराती में अनुवाद करते हुए मुनि जी ने लिखा—

**"संस्कृत भाषा जाणुहु तो पिणा ब्रजभाषा नी वाँछा घणी है मुजने"।**

इन प्रमाणों से सर्वथा स्पष्ट है कि केशव की साहित्यिक भाषा को उनके कुछ ही समय बाद 'ब्रजभाषा' कहा जाने लगा था। सूर की तरह केशव भी उन कवियों में से हैं, जिनकी भाषा ब्रजभाषा के साहित्यिक गौरव की प्रथण प्रामाणिक पहचान

कराती है। इसी महिमा की अन्तिम परिणति में कवियों के बीच कहा जाने लगा—

"जो न जानै ब्रजभाखा ताहि साखामृग जानिये।"

इसमें सन्देह नहीं कि ब्रजभाषा का माधुर्य केशव की रचनाओं, विशेषतः **'रसिकप्रिया'** और **'कविप्रिया'** में असाधारण रूप से व्यक्त हुआ है। उसमें मुहावरों और लोकोक्तियों में समावेश की जो परम्परा केशव ने निजी ढंग से चलाई, उसका प्रभाव घनानन्द, मतिराम, देव, ठाकुर और पद्‌माकर आदि परवर्ती 'भाषा' कवियों पर सहज ही देखा जा सकता है।

उक्ति में मुहावरों को बाँधने की प्रवृत्ति केशव ने सूर और तुलसी से ली हो तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि **सूरसागर**, **रामचरितमानस** और **कवितावली** इस दृष्टि से आदर्श रचनाएँ मानी जा सकती हैं। भाषा की बुद्धि-विधि-समृद्धि का बोध केशव की रचनाएँ भी कराती हैं, पर उनमें कहीं-कहीं लोच का अभाव मिलता है और अनगढ़पन भी दिखायी देता है। कुछ उदाहरणों से यह मिली-जुली स्थिति स्पष्ट हो जायेगी।

**रसिकप्रिया**

—जौ रिसि जाइ तो जैये मनावन, तातो है दूध सिराइ तो पीजै ॥
—देखि धौं अंगनि आरसी लै, मिलिहै पिय सौं मन ही मन कौलौं ॥
—कैसे हूँ न माने हौं मनाइ हारी 'केसौदास'
बोलि हारी कोकिल, बुलाइ हारी चातकी।
—एती है झुठाई वह अब ही रूठाई यह,
छार हू तौ छूटी नाहिं पाइन के पारे की।
—हरित्यौं टुक दीठि पसारत ही, अंगुरीन पसारन लोग लगैं।

**रामचन्द्रिका**

—छूटे सबै सबनि के सुग क्षुत्पिपास।
विद्वद्विनोद गुण,गीत विधान बास ॥
—भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंस के है मनो भोग भारे भनों।
—राजपत्नि समेत पत्रनि विप्रलाय गटी रटी।

एक ओर **गलसुई**, **गौर मदाइन**, और **चेटुवा** जैसे ठेठ शब्द और दूसरी ओर अग्नि के लिए **धनंजय** और पानी के लिए **विष** का प्रयोग, जो पंडितों को भी दुरूह लगे।

# केशव-काव्य में दोष-दर्शन

स्वयं केशव को 'दूषन सहित कवित्त' 'कृतघ्नी प्रभु' की तरह असेव्य लगता था। **कविप्रिया** में उन्होंने यह बात तो कही ही है। किन्तु इससे पहले काव्य-दोष के प्रति अत्यन्त शुद्धतावादी दृष्टि का परिचय भी दिया है। वनिता और कविता में उन्हें रंचमात्र दोष असह्य था।

राजत रंच न दोस जुत कविता वनिता मित्र।
बुंदक हाला होत ज्यों गंगाघट अपवित्र॥

यह विचार अनुदारता और संकीर्णता का परिचायक है। सांस्कृतिक दृष्टि से इसमें आत्मविश्वास की कमी झलकती है। इसके ठीक विपरीत तुलसीदास का विचार हैं, जिसमें पावनी-शक्ति को सामर्थ्य का प्रतीक मानकर समर्थ को दोषों से ऊपर माना गया है।

सुभ अरु असुभ सलिल सब वहई। सुरसरि कोउ अपुनी न कहई।
समरथ कहुँ नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

आचार्य भरत किसी ऐसी वस्तु की परिकल्पना नहीं करते, जो सर्वथा 'दोष परिवर्जित' हो। अतएव वे नाट्य-सन्दर्भ में अतिवादी दोष-दृष्टि का निषेध करते हैं। विश्वनाथ महापात्र भी अपने **साहित्य दर्पण** में यही लिखते हैं कि "सर्वथा निर्दोषस्येकान्तमसम्भवात्"। वह 'कीटानुविद्धरत्न' के परिहार की सलाह नहीं देते। केशवदास ने इन आचार्यों का अनुसरण न करके भामह, दण्डी, केशव मिश्र तथा रुद्रट आदि अनुदारतावादी आचार्यों का अनुसरण किया है। भामह काव्य में एक पद की सदोपता भी कुपुत्र की तरह असह्य मानते हैं। दण्डी दोष-युक्त वाणी को गोत्व-प्रदर्शिका वताते हैं। केशव मिश्र तो अपने **अलंकार शेखर** में दोष को सर्वथा त्याज्य घोषित करते हैं—'**दोषः सर्वात्मनो त्याज्यो**।' केशवदास यहाँ स्पष्टतः केशव मिश्र से प्रभावित हैं।

इस कठोर दृष्टि का प्रतिक्रियात्मक परिणाम यह हुआ कि समीक्षकों ने केशव के काव्य को भी उतना ही कठोरता से देखा और उन्हें दोष ही दोष दिखा दिये। रस, छन्द, अलंकार और शब्दार्थ, कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं, जिसमें केशव का काव्य निर्दोष माना गया हो। केशव में प्रखर आत्म-निरीक्षण वृत्ति होती तो वे अपने काव्य को स्व-निर्धारित काव्यादर्श के अनुरूप सर्वथा निर्दोष रखते, पर वैसा हो नहीं सका। कदाचित् इसका कारण यही है कि आगे उनका कवि-रूप आचार्य-

रूप से अधिक सक्रिय और सशक्त सिद्ध हुआ। केशव में व्यक्तित्व की इतनी ऊँचाई नहीं मिलती, जो आत्म और 'पर' के भेद से ऊपर दिखायी दे। उनका स्वभाव सात्त्विक की अपेक्षा राजस अधिक था। कदाचित् इसीलिए वे सन्त प्रतीत नहीं होते। मिश्र-बन्धुओं ने उनके काव्य में अनुपयुक्त कथन, अपनी सनाढ्य जाति की अतिशय बड़ाई, सीता-त्याग से पूर्व राम-सीता-वार्तालाप, **कविप्रिया** में पृथ्वी को त्रिकोण मानना यथा 'पावक के कुंड सी त्रिकोण कीन्हीं धरनी' (6/12) क्रोध न करने की प्रतिज्ञा लेनेवाले विश्वामित्र को क्रोधाविष्ट चित्रित करना **(जान्यो विस्वामित्र के क्रोध बस्यो उर आय)** इत्यादि दोष गिनाते हुए अन्ततः उनके स्वभावतः कवि न होने की बात भी कह डाली—

'केशवदास किसी विषय में तल्लीन होकर आत्म-विस्मरण नहीं कर सकते थे। ···ये महाशय बड़े पंडित और बुद्धिमान थे परन्तु स्वभावतः कवि न थे।"
(**मिश्र बंधु विनोद**, पृ० 298)

शुक्लजी द्वारा 'हृदयहीनता' का आरोप भी लगभग इसी प्रकार का है—

'केशव में हृदय का तो कहीं पता ही नहीं। वह प्रबन्ध पटुता भी उनमें नाम को नहीं मिलती, जिससे कथानक का सम्बन्ध निर्वाह होता है! उनकी **रामचन्द्रिका** फुटकर पद्यों का संग्रह-सी जान पड़ती है। **वीरसिंहदेवचरित** में उन्होंने अपनी हृदय-हीनता की ही नहीं, प्रबन्ध-रचना की भी पूरी असफलता दिखा दी है।" (हृदयहीन केशव, टिप्पणी, **समालोचक**, 1925 ई०, पृ० 338) शुक्ल जी की धारणा का तीव्र प्रतिवाद करते हुए उनके समकालीन हिन्दी इतिहासकार एवं समीक्षक बाबू श्यामसुन्दर दास ने लिखा—

केशव को हृदयहीन कहकर हम उनके प्रति अन्याय करते हैं क्योंकि एक तो उनकी हृदयहीनता जानी-समझी हृदयहीनता है। फिर अनेक स्थलों पर उन्होंने पूर्ण सहृदय होने का परिचय दिया है।'

अपने ढंग से अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी केशव-काव्य के तथाकथित दोषों का परिहार गुण-दृष्टि अपनाकर किया और स्पष्ट रूप से उसी **रामचन्द्रिका** का पक्ष लिया, जिसके कारण शुक्लजी क्षुब्ध थे।

**रामचन्द्रिका** की रचना पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए हुई है और यह दृढ़ता से कहा सकता जा है कि हिन्दी संसार में कोई प्रबन्ध काव्य इतना पाण्डित्यपूर्ण नहीं है। केशव संस्कृत के पूर्ण विद्वान् थे। उनके सामने नैषध और शिशुपाल-वध का आदर्श था। वह उसी प्रकार का काव्य हिन्दी में निर्माण करने के लिए उत्सुक थे। इसीलिए **रामचन्द्रिका** अधिक गूढ़ है। केशव विषयक पक्ष-विपक्ष के अभिमतों का यह क्रम अब भी जारी है अतः यह सहज ही कहा जा सकता है कि वे रीति-

परम्परा के सबसे अधिक विवादास्पद कवि हैं। दोष दर्शन प्राय: इसी विवाद का अंग होकर सामने आया है।

केशव के काव्य में प्राय: सभी प्रकार के दोष निर्दिष्ट किये गये हैं। पर कुछ अज्ञान वश एवं अकारण ही उनके सिर मढ़ दिये गये हैं क्योंकि समीक्षकों को परम्परा का सही ज्ञान हो, ऐसा नहीं लगता। फिर भाषा का स्थिरीकरण एक सुदीर्घ प्रक्रिया है। प्रारम्भिक स्थिति में प्रयोगों में वैविध्य मिलता ही है विशेषत: जब कवि ने अनेक भाषा-रूपों का मिश्रित प्रयोग किया हो। तथापि कुछ दोष तो उल्लेखनीय हैं ही।

काल-विरुद्ध दोष के अन्तर्गत **रामचन्द्रिका** के यह दो उदाहरण विशेषत: दिये जाते हैं—

—पांडव की प्रतिमा सम लेखी। अर्जुन भीम महाकति देखी। 11/21

—दूषत जैन सदा सुभ गंगा। छोड़हुगे वह तुंग-तरंगा ।। 33/37

पहले में त्रेता के राम द्वापर के पाण्डवों का नाम लेते है और दूसरे में लक्ष्मण जैन-धर्म के गंगा-विरोध की बात कहते हैं। असंगति स्पष्ट है। कवि ने अपने युग के विचारों का प्रक्षेपण पात्रों में करते समय औचित्य पर ध्यान नहीं दिया है।

क्रम-दोष का उदाहरण भी उल्लेखनीय है, जहाँ केशव ने अवतारों के प्रसंग में पहले **कच्छप** का नाम लिया है फिर 'मीन' का। जबकि मत्स्यावतार पहला अवतार है। कच्छप उसके बाद आता है। "क्रम ते उठी सब रोइ" (10/30) लिखकर रोने में भी 'क्रम' देखनेवाले केशव यहाँ कैसे चूक गये, आश्चर्य है।

तुम ही घर कच्छप वेष धरो जू।
तुम ही मीन हो वेदन कौ उधरो जू।। (20/22)

रामचन्द्रिका के एक छन्द के कई चरणों में 'शोभ' शब्द का प्रयोग मिलता है पर उससे किसी प्रकार की शोभा-वृत्ति नहीं हुई है।

गजकुम्भनि हारिन शोभ भई।
कटि केहरि किंकणि शोभ सचे।। (11/28)

इसे ठीक-ठीक पुनरुक्ति भी नहीं कह सकते हैं पर है कुछ वैसा ही दोष। यति-भंग और विरति-भंग के प्रभूत स्थल मिलते हैं। दो उदाहरण देखे जा सकते है—

भावनमय अरथ बखानैं। (11/17)
सहिहौं तपन ताप, पर के प्रताप रघु।
वीर को बिरह वीर मोपै न सह्यो परै।। (9/26)

न्यूनाधिक मात्रा या वर्ण सम्बन्धी दोषों को अनिश्चित पाठ के कारण पहले क्षम्य मान लिया गया पर अब पाठ-विनिश्चय के बाद वैसी स्थिति नहीं रही।

च्युत-संस्कृति दोष में शाप दई (12/35); अंगद रक्षा रघुपति कीन्हों

(13/35) पर्लोक (17/21) तथा अशोकलगना वनदेवता सी (20/9) आदि की गणना की जाती है। अन्तिम उदाहरण में उपमा होने के कारण लिंग-दोष का परिहार हो जाता है। इसी प्रकार, 'तजी विप्रन थूँक कै' को 'जुगुप्सा व्यंजक' बताया गया है पर यह मुहावरे में आता है। हाँ, 'मातु गई च्वै' (3/34) अवश्य वैसा लगता है। विनयता शब्द में ता प्रत्यय अनावश्यक माना गया है। ऐसे ही अन्यान्य दोष गिनाये गये हैं, जो केशव की कवि सुलभ निरंकुशता के परिचायक हैं।

# केशव के काव्य में ललित कलाओं का सन्दर्भ और संस्कार

लोक-परम्परा से अनेकमुखी सम्पर्क रखते हुए भी, उत्तर मध्यकाल में कविता और चित्रकला दोनों का विकास मुख्यतया राजाश्रय में हुआ। संगीत तथा शिल्प के अन्य रूपों को भी राजाओं द्वारा पर्याप्त प्रश्रय मिला, किन्तु इन्हें धार्मिक केन्द्रों से कम प्रेरणा प्राप्त नहीं हुई। पूर्व-मध्यकाल में तो रागबद्धता—विशेषतः वैष्णव भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों से सम्बद्ध होकर सारे देश पर छा गयी और राजा भी किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बद्ध होने में गौरव का अनुभव करने लगे। केशवदास ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्व मध्यकाल में विद्यमान हैं, पर साहित्यिक दृष्टि से उत्तर मध्यकालीन रीति-काव्य का अधिक प्रतिनिधित्व करते हैं। एक प्रकार से वे दोनों की सन्धि पर स्थित हैं और दोनों के प्रेरक तत्त्वों का उनके काव्य ग्रन्थों में विचित्र सामंजस्य मिलता है।

केशव के युग में मुग़ल-शैली की चित्रकला दिल्ली और आगरा दरबार का प्रश्रय पाकर अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी थी। बेह्ज़ाद, ईरान के चित्रकार अबुलसमाद और मीर सईद अली भारत आये। इन्हीं की प्रेरणा से मुग़ल शैली का उद्‌भव एवं उत्कर्ष हुआ। अकबर और जहाँगीर दोनों कला-प्रेमी थे तथा दोनों ने ही हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के बीच भावात्मक समन्वय स्थापित करने की पूर्ण चेष्टा की, जिसमें उन्हें असाधारण सफलता मिली। बसावन, दसवन्त और केसूदास आदि अनेक हिन्दू-चित्रकार मुग़ल दरबार में प्रश्रय पाते रहे। यह समन्वय-भावना व्यावहारिक स्तर पर भी सक्रिय हुई और केशवदास ने इसमें अपना पूरा योगदान दिया। **'वीरसिंहदेवचरित'** और **'जहाँगीरजसचन्द्रिका'** नामक दोनों ग्रन्थ इसके साक्षी हैं।

मुग़ल शैली से पूर्व प्रचलित राजस्थानी शैली अथवा राजपूत चित्रकला भारतीय परिवेश को अधिक उजागर करती है। मुग़ल-शैली में स्त्रियों का अंकन अपवाद रूप में भी मुश्किल से मिलता है किन्तु राजस्थानी शैली के प्रायः समस्त चित्रों में नारी-रूपचित्रणा की प्रधानता मिलती है। केवल व्यक्ति-चित्रों में पुरुषाकृतियाँ विशेष अंकित की गयी हैं और इस पर मुग़ल-शैली का प्रभाव भी मिलता है। नारी-चित्रों में रूप-सौन्दर्य, वेश-विन्यास, सहजतायुक्त साज-शृंगार और सूक्ष्म भावमयता के साथ अंग-भंगिमाओं का अद्‌भुत सामंजस्य मिलता है। चित्रों की वर्ण-योजना इतनी आकर्षक होती है कि आज भी उनका महत्त्व कम

नहीं हुआ है। विशेषज्ञों की दृष्टि में ऐसे-नारी-चित्रों में मुख यौवन-कान्ति से दीप्त, केश-राशि कभी उन्मुक्त—कभी कसी-बँधी, लम्बी-पतली नाक, अरुण अधर, बादाम, कमल या मछली जैसी नेत्राकृति, चिकनी सुडौल ग्रीवा, बाहर की ओर उभरा हुआ चिबुक, दबा हुआ भाल, अधखुला उन्नत वक्षस्थल, कसी हुई चोली, मुक्ता मालाओं से दीप्त कंठ, अनावृत क्षीण कटि और अधोभाग में घाघरा पटुका तथा ऊपर ओढ़नी का चित्रण हुआ है। केशव के काव्यात्मक रूप वर्णन से इसकी पूरी संगति मिलती है। अलंकार-बहुलता उनके काव्य में ही नहीं, नारी निरूपण में भी मिलती है। नारी के सोलहों शृंगारों को उन्होंने एक ही छन्द में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

प्रथम सकल सुचि मंजन अमल बास,
जावक सुदेस केस-पास को सुधारिबो।
अंगराग भूषन विविध मुख-बास-राग,
कज्जल-कलित लोल-लोचन निहारबो।
बोलनि हँसनि मृदु चातुरी चितौनि चारु,
पल पल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो।
'केसौदास' सविलास करहु कुँवरि राधे,
इहि विधि सोरह सिंगार सिंगारबो।

नारी की मध्यकालीन कल्पना ही यही थी। अतः कविता और चित्रकला दोनों में इसका समावेश मिलता है। शृंगार-रहित नैसर्गिक सौन्दर्य की वरीयता मानते हुए कवियों ने सहज आंगिक रचना में उपमानों के सादृश्य से अतिरिक्त छवि उत्पन्न की है जैसे, नेत्र—कमल, भृकुटि—धनुष, मुख—चन्द्र, सिंह—कटि आदि चित्रकारों ने भी इसी रूप-कल्पना का अनुसरण किया है। पुरुष-वेशभूषा में भी शैलीगत वैशिष्ट्य तथा युगीन संगति मिलती है।

केशव ने अपने काव्य में 'चित्रशाला' एवं 'चित्रसारी' का अनेक बार उल्लेख किया है। यथा—'योचित की चितसारी चढ़ी' (खण्ड 1 कविप्रिया)। अन्य रीति कवि भी चित्रमय भवनों की स्थिति से परिचित थे और इसी प्रकार चित्रकारी शब्द का प्रयोग करते हैं, जैसा केशव ने किया है। भवनों तथा मन्दिरों की भित्तियों पर बने चित्रों के प्रति संस्कृत और हिन्दी का समस्त प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य सजग रहा है, क्योंकि यहाँ अत्यन्त आदिम काल से भित्ति-चित्रों की समृद्ध रचना-परम्परा मिलती है, जिसका प्रभाव देश के बाहर भी पड़ा है। भारतीय साहित्य और कला का तो यह एक स्वीकृत सत्य है। केशव ने **'कविप्रिया'** में लिखा है—

**'देव चरित्र विचित्र चित्र चित्रित आँगन घर।'**

राजमहलों में चित्रशालाओं की रचना गौरव की वस्तु मानी जाती थी। मुग़ल

तथा राजपूत सभी ने इसे प्रश्रय दिया। दिल्ली और ओरछे के राजप्रासाद इसके आदर्श बने। जयपुर-ग्वालियर ही नहीं कोटा-बूँदी, मथुरा-काशी से लेकर मिथिला तक इसका प्रसार हुआ। दक्षिण भारत तो इस दृष्टि से पहले से ही अतिशय सम्पन्न रहा है।

केशव ने नूपुर-किंकिणी-कंगन-सीसफूल आदि से विभूषित नारी को **'तोरति-फूल'**, **'सींचति तरु-मूल'** **'हंस चुगावति'** तथा **'मृगानि चरावति'** आदि गतिशील मुद्राओं में वर्णित किया है, जिसकी चित्रात्मकता असंदिग्ध है। यह सही है कि चित्र में एक साथ अनेक मुद्राएँ चित्रित नहीं हो सकतीं जबकि काव्य में एक के बाद एक मुद्रा वर्णित की जा सकती है। कुछ शृंखलाबद्ध चित्रों में मुद्राओं की अनेकता प्रदर्शित करने का प्रयास भी किया गया है। नारी की देह-यष्टि के प्रति केशव ने चित्रकार की दृष्टि अपनायी है, इसमें सन्देह नहीं। उनके अनेक शब्दचित्र इसके प्रमाण हैं और फिर **'रसिकप्रिया'** तथा **'कवि-प्रिया'** की प्रेरणा से जितनी चित्र-मालाएँ निर्मित हुईं, वे तो इसकी सबसे बड़ी साक्षी प्रस्तुत करती हैं कि केशवदास के भीतर एक चित्रकार निरन्तर सक्रिय था। **'कांगड़ा पेंटिंग्स आफ लव'** में **एम० एस० रन्धावा** ने ऐसे अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं, जिनकी रचना केशव के छन्दों के आधार पर हुई है। **'कविप्रिया'** और **'रसिकप्रिया'** से प्रेरित चित्र अनेक चित्र-शैलियों में निर्मित हुए हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि उनकी चित्रात्मकता ने कुशल चित्रकारी को बहुत काल तक अनेक रूपों में प्रभावित किया। बिहारी और मतिराम के अतिरिक्त केशव जैसा यह गौरव अन्य किसी रीति कवि को प्राप्त नहीं हुआ है। चित्रात्मकता देव और पद्माकर में भी प्रचुर मात्रा में मिलती है, किन्तु चित्र-कारों ने केशव और बिहारी से ही विशेष प्रेरणा प्राप्त की, अतएव उनकी विशिष्टता निर्विवाद सिद्ध है।

**'कविप्रिया'** में संगीतमय वातावरण तथा कला-कुशल नर्तकियों का इतनी सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है कि केशव की संगीतज्ञता स्पष्ट प्रमाणित होती है।

# परम्परा-प्रवर्तक केशव तथा हिन्दी के अन्य आचार्य-कवि

काव्य-समीक्षकों का यह कथन निर्थरक नहीं है कि हिन्दी के परवर्ती कवियों ने केशव को ही आचार्य रूप में श्रद्धांजलि दी है। बात यहीं तक सीमित नहीं। काव्य विषयक दृष्टिकोण का निर्माण, कलात्मक वैशिष्ट्य पर बल, शास्त्र ग्रन्थ रचकर सभा में **'भाषा'** के माध्यम से पाण्डित्य को प्रतिष्ठा दिलाने का पराक्रम काव्य-शास्त्र के रस-अलंकार, गुण-दोष, छन्द-विधान आदि महत्त्वपूर्ण पक्षों को समाहित करते हुए श्रेष्ठ काव्य का प्रतिमान-निर्धारण, संस्कृत के मान्य ग्रन्थों का आधार लेकर लक्षण-उदाहरण दोनों स्वयं रचकर कवि और आचार्य के उभय रूप में अपनी प्रतिभा का प्रकाशन तथा ऐतिहासिक गतिविधि और लोकमत का आकलन करते हुए समसामयिक राजनैतिक जीवन की समस्याओं से सीधा और सक्रिय सम्बन्ध बनाये रखना, जो केवल राज-प्रशंसा तक सीमित न हो, केशव के व्यक्तित्व का प्रतीकार्थ बन गया। उस समय के जन-पक्ष का मुख्य अर्थ विदेशी सत्ता से संघर्ष करनेवाले भारतीय राजाओं और उनके समर्थकों का पक्ष ग्रहण करना ही था, जिसे ये काव्याचार्य अपने ढंग से निभाते रहे। इस प्रकार केशव का आचार्यत्व एक सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति के रूप में सम्मान्य हुआ तथा अन्य काव्याचार्यों के लिए प्रेरक बना। सुदूर क्षेत्रों तक **'कविप्रिया'** और **'रसिकप्रिया'** कवि शिक्षा के लिए आधार-ग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त की जाने लगी और शताब्दियों तक उन्हें यह गरिमा प्राप्त रही। ऐसा गौरव हिन्दी के किसी अन्य कवि आचार्य को प्राप्त नहीं हुआ। संस्कृत के **'काव्यप्रकाश'** और **'साहित्य दर्पण'** जैसे ग्रन्थों को जैसी प्रसिद्धि मिली, कुछ वैसी ही ख्याति हिन्दी के क्षेत्र में केशव की कृतियों को सहज सुलभ हो गयी क्योंकि उन्होंने सबसे पहले एक ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति की। अपने आश्रयदाताओं को काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों का समर्पण, राज-प्रशंसा में अतिरंजना तथा विलासमय जीवन का विशद रूप से चित्रण एवं कुछ ऐसी ही कुछ अन्य बातें रीति-काल में प्रचलित अवश्य रहीं पर कवि अपने विवेक के अनुसार आश्रयदाता चुनने और त्यागने का साहस दिखाते भी प्रतीत होते हैं। केशवदास अधिकतर ओरछा राज्य के आश्रय में रहकर एकनिष्ठ भाव से अपने कवि-आचार्य धर्म का गौरव के साथ निर्वाह करते रहे, इससे भी उनकी मान्यता विशेष रूप से परिवृद्ध हुई और उनका प्रभाव शताब्दियों तक बना रहा। उन्हें एक नये पथ के अनुसरण का श्रेय मिला। राज-

सभा में हिन्दी साहित्य को अपने पाण्डित्य के बल पर सम्मानित कराने का प्राथमिक श्रेय मध्य काल में मुख्यतया उन्हीं को प्राप्त है।

विशुद्ध काव्य-चिन्तन भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है और ब्रजभाषा के द्वारा उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। यह अपने समकालीन समाज में केशवदास ने अपनी प्रतिभा के आधार पर स्वीकार करा लिया। आगे के आचार्यों का पथ प्रशस्त हो गया। एक प्रकार से उनके लिए वह राजमार्ग भी खुला था। केशव ने भक्ति से भी अपना सम्बन्ध बनाये रखकर उसे राजमार्ग में परिणत कर दिया, जो रीतिकाल में अधिकाधिक लोक ग्राह्य होता गया। इसीलिए केशव का आचार्यत्व केवल रीति ग्रन्थ रचना तक सीमित नहीं माना जा सकता। इतिहासकार होकर भी शुक्ल जी ने उनका सही मूल्यांकन नहीं किया।

## केशव और चिन्तामणि

रीति-परम्परा के समस्त आचार्य-कवियों में **केशवदास** का स्थान सर्वोपरि है, यह बात प्रायः निर्विवाद है परन्तु रीति-काल के समारम्भ का श्रेय किसको दिया जाय, इस विषय में अवश्य पर्याप्त मतभेद रहा है। ग्रियर्सन ने केशव को विशेष महत्त्व दिया है यद्यपि वे मानते हैं कि रीति-परम्परा उनके 70 वर्षों बाद रूढ़ हुई। इसका श्रेय उन्होंने चिन्तामणि और उनके भाई भूषण तथा मतिराम तीनों को दिया। रामचन्द्र शुक्ल ने इस आधार पर कि केशव के उपरान्त तत्काल रीति-ग्रन्थों की परम्परा नहीं चली। यह श्रेय चिन्तामणि को प्रदान करते हुए आगे लिखा—'हिन्दी रीतिग्रन्थों की अखण्ड-परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली अतः रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए।'

(**हिंदी साहित्य का इतिहास**, पृ० 259)

श्यामसुन्दर दास ने अपने 'हिन्दी साहित्य' में इसका प्रतिवाद करते हुए हिन्दी रीति-परम्परा के आदि प्रवर्त्तक के रूप में केशव को ही मान्यता प्रदान की। डॉ० रसाल तथा उनके शिष्य डॉ० मनोज ने भी इस मत का समर्थन किया है क्योंकि केशव के अलंकारवाद के ये स्वयं समर्थक थे। पर डॉ० नगेन्द्र ने रसवादी होते हुए भी सन्तुलित दृष्टि अपनाकर पूर्वापर स्थिति का आकलन करते हुए केशवदास को निर्भ्रान्ति रूप से वरीयता दी है। वे इसको एक 'संयोग मात्र' मानते हैं कि 'चिन्तामणि' के उपरान्त रीतिकाव्य की धारा अविच्छिन्न रूप से चली। मैंने अपने **'रीति-काव्य-संग्रह'** में इस प्रश्न पर जो दृष्टिकोण अपनाया है, वह अब और भी सही लगता है क्योंकि इस बीच केशव और चिन्तामणि के बीच आने वाले अन्तराल में लगभग एक दर्जन रीतिग्रन्थों का पता चला है। 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' के षष्ठ खण्ड में केशव के पहले और बाद रचे गये रीति-ग्रन्थों की सूची देते हुए निष्कर्ष रूप में लिखा गया है—

"उपर्युक्त कवियों की लम्बी शृंखला को देखकर यह कहना अधिक युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता कि संवत् 1700 वि० से पूर्व हिन्दी काव्य की रचना में अखण्डता नहीं थी, या रीतिकाव्य की धारा विरल और वेगहीन थी ।"—(पृ० 168)

केशव और चिन्तामणि के बीच का अन्तराल अब अन्तराल नहीं रह गया है। उसे हरिराम, मुबारक, गोप, लीलाधर और छेमराज आदि अनेक कवियों के कृतित्व ने भर दिया है। सेनापति का **'कवित्त रत्नाकर'** तो सुविज्ञात है ही। इस समस्या का समाधान उक्त अन्तराल को संधि-काल मानकर किया जा सकता है, जिससे भक्ति और रीति दोनों की प्रवृतियाँ गतिशील रहीं। अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती दोनों वर्गों के हिन्दी रीतिकवियों में केशव का आचार्यत्व सबसे विशिष्ट दिखायी देता है, जिसके अनेक कारण हैं। एक तो केशव ने निजी अभि-रुचि का प्रदर्शन करते हुए संस्कृत के भामह-दण्डी आदि आचार्यों के ग्रन्थों का प्रामाणिक अनुशीलन किया और दूसरे उसे भाषाबद्ध करके स्वरचित उत्कृष्ट उदाहरणों से निष्ठापूर्वक संवर्धित भी किया। देश की सुप्रतिष्ठित राजसभा में वे वंशानुगत गुरुत्व के साथ कवित्व का जितना गहरा मेल स्थापित कर सके, वैसा और किसी कवि के द्वारा बाद तक सम्भव नहीं हो सका, यह तीसरा कारण है। चौथा और अन्तिम कारण उनकी **'कविप्रिया'** और **'रसिकप्रिया'** की ख्याति और प्रेरणात्मक अनुसरण है। वह बात अधिक महत्त्व नहीं रखती कि उन्होंने **'काव्यालंकार'** और **'काव्यादर्श'** आदि ग्रन्थों से प्रेरणा ग्रहण की जबकि रीति-कालीन कवियों ने अधिकतर **'काव्यप्रकाश'**, **'साहित्यदर्पण'** और **'रसतरंगिणी'** को आधार-ग्रन्थ बनाया। वस्तुतः केशव ने मम्मट, विश्वनाथ और भानुदत्त के ग्रन्थों को भी देखा था। डॉ० किशोरीलाल ने **'रीतिकवियों की मौलिक देन'** (पृ० 116) में इसका निर्देश किया है। दोनों का उद्देश्य तथाकथित भदेस भाषा-काव्य को संस्कृत की समकक्षता में रखकर अन्ततः राज-सभा एवं सभ्य समाज में प्रतिष्ठित कराना था, जिसमें केशव अग्रणी और सर्वाधिक सफल कवि सिद्ध हुए। उनके ग्रन्थ अन्य कवियों के पाण्डित्य की कसौटी बने। **'केशव की कविताई'** का ज्ञान सभा में प्रतिष्ठा प्राप्त करने का एक बहुमान्य प्रतिमान बन गया। उनकी उक्तियों और उद्भावनाओं का व्यापक अनुसरण होने लगा और मतिराम, देव, पद्माकर और भिखारीदास जैसे आचार्य कवियों ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की। अन्ततः केशवदास हिन्दी रीति परम्परा के आचार्यत्व के प्रतीक बन गये। यह श्रेय चिन्तामणि को प्राप्त नहीं हो सका। जिसने भी दोनों की तुलना की, उसने अनुभव किया कि न तो आचार्यत्व की दृष्टि से चिन्तामणि केशव के समकक्ष है और न कवित्व की दृष्टि से ही वे उनके निकट पहुँचते हैं। **'शृंगार मंजरी'** के अनुवाद ग्रन्थ सिद्ध हो जाने के बाद चिन्तामणि की स्थिति और भी चिन्ताजनक हो गयी है। यह कहना भी अयथार्थ है कि केशव मात्र अलंकारवादी हैं क्योंकि

उन्होंने 'रसिकप्रिया' में 'रस' को ही प्रधानता दी। अपनी काव्य-परिभाषा में भी वे 'सरस' शब्द का प्रयोग करना नहीं भूले—

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुबृत्त।
भूषन बिनु न बिरजाई, कविता बनिता मित्त॥

चिन्तामणि भी अलंकार और रस दोनों को महत्त्व देते हैं। यह अवश्य है कि रस के प्रति उनका झुकाव केशव से अधिक है। उनका यह कथन प्रमाण है।

"रसवन्त कवित्तन को रस ज्यों'
अंखरान के ऊपर ह्वै छलकै।"

केशव के भी अनेक छन्द चिन्तामणि के इस कथन को चरितार्थ करते हैं। यदि तुलसी की तुलना में शुक्लजी को केशव 'हृदयहीन' प्रतीत हुए और केशव की तुलना में चिन्तामणि 'सरस' तो उनका पक्षपात चिन्तामणि के प्रति होना स्वाभाविक ही था पर वह था, पक्षपात ही। इसमें सन्देह नहीं।

# परवर्ती हिन्दी कवियों पर केशवदास का प्रभाव

केशव के इस प्रभाव को आचार्य, प्रबन्धकार और मुक्तककार तीन इन रूपों में आकलित किया जा सकता है। ये तीनों रूप केशव के काव्य में एक-दूसरे से सर्वथा असम्पृक्त नहीं हैं। वरन् एक-दूसरे में इस प्रकार समाहित हैं कि उन्हें सहज ही अलग करना सम्भव नहीं है। उनका आचार्यत्व रीतिकार के रूप में तो प्रमुख है ही, एक वेदशास्त्रज्ञ पौराणिक पण्डित की तरह भी सामने आता है, जो रीति ग्रंथों तक सीमित नहीं है। प्रबन्धों में छन्द-बाहुल्य के कारण मुक्तक शैली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसी प्रकार, अनेक मुक्तक ऐसे रचे गये हैं, जो कथागर्भित होने के कारण अपने में प्रबन्धात्मकता का गुण भी रखते हैं। परवर्ती काल में भी अनेक काव्याचार्यों ने मुक्तक-शैली और प्रबन्ध-शैली के बीच यह संरचनात्मक अन्तर्सम्बन्ध बनाये रक्खा। इन शैलियों का स्वच्छ एवं स्वतन्त्र प्रयोग भी विकसित हुआ, परन्तु पाण्डित्य-प्रदर्शन का आत्यन्तिक निषेध रीति-परम्परा के कवियों में सम्भव न हो सका। इसका बहुत कुछ श्रेय केशवदास को है क्योंकि वे पहले हिन्दी कवि हैं, जिन्होंने संस्कृत की रस-अलंकारमयी काव्य-शास्त्रीय परम्परा को पूरी निष्ठा और मनोयोग के साथ सगर्व आत्मसात् किया तथा जह्नु ऋषि की तरह अपने में ही न सहेज कर भगीरथ के समान सबके लिए सुलभ कर दिया। उन्हीं के शब्दों में कहा जाय तो यह—

**'भगीरथ-पथ गामी गंगा कैसो जल है।'** रामचन्द्रिका (2/10)

## आचार्य-रूप में प्रभाव

जैसा केशव को अभीष्ट था, **'कविप्रिया'** और **'रसिकप्रिया'** दोनों रीति-पूरक कृतियाँ वस्तुतः कवियों एवं काव्य-रसिकों का कण्ठहार बन गयी और शताब्दियों तक हिन्दी-कवियों ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की। रीति-परम्परा के कवियों ने काव्यादर्श में विचार-भेद भले ही प्रकट किया हो परन्तु रीति-ग्रंथों के रचना-क्रम में उनको एक कीर्तिमान के रूप में सदा प्रेरक एवं अनुकरणीय माना है। उनसे असहमत होना भी उनकी प्रेरणा का ही एक रूप रहा है। अलंकार-शास्त्र और नायिका-भेद एवं नख-शिख-वर्णन, इन्हीं दो किनारों से बँधकर हिन्दी रीति-काव्य धारा शताब्दियों तक सवेग प्रवाहित हुई है। शास्त्र और शृंगार एवं वीर रस का शैलीबद्ध अनुसरण राजा-श्रितकाव्य का स्वभाव रहा है। भक्ति और

नीति का भी उसमें कालान्तर में समावेश होता गया। जहाँ तक हिन्दी का सन्दर्भ है, केशव के समकालीन रहीम में यह सभी तत्त्व न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान हैं परन्तु काव्याचार्य के रूप में केशव की प्रतिष्ठा उनसे कहीं अधिक प्रौढ़ और विशिष्ट है क्योंकि उन्होंने रहीम की तरह केवल उदाहरणों तक अपने को सीमित नहीं रक्खा, जैसा 'नगर शोभा' और 'बरवै-नायिका-भेद' में मिलता है वरन् लक्षण-उदाहरण की सुसमृद्ध रचना-विधि का हिन्दी में पूरी तेजस्विता और आत्म-विश्वास के साथ सूत्रपात किया। साथ ही, यह भी सिद्ध कर दिया कि इस परम्परा का श्रेय अकबरी दरबार के गंग और नरहरि जैसे चारण-वृत्ति वाले राजप्रशंसक कवियों को न होकर देश के स्वाभिमानी प्रतिपक्षी राजा इन्द्रजीत के दरबार में स्थित तथा राजगुरु एवं राजकवि दोनों के सम्मिलित गौरव के साथ संपूज्य एवं सुप्रतिष्ठित केशवदास को है। केशव की कोटि का कोई कवि मुग़ल-दरबार को कभी सुलभ न हो सका। इसके सुपुष्ट सांस्कृतिक कारण हैं। सूर-तुलसी जैसे भक्त कवि दरबारदारी के प्रलोभन से सर्वथा विरत थे ही, अरबी-फ़ारसी भाषा को भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक महत्त्व देनेवाले मुग़ल दरबार में रीति-कवि को भी कोई विशेष आकर्षण प्रतीत नहीं हुआ क्योंकि उसका संकल्प भी संस्कृत और फ़ारसी के समकक्ष भाषा-काव्य को गौरव के साथ प्रतिष्ठित करना था। यह कार्य आयातित संस्कृति से अनुप्राणित राजदरबारों में ही सम्भव था फलतः उन्हीं में रीति-काव्य विशेष रूप से पनपा।

जहाँ तक शास्त्रनिरूपण का प्रश्न है, केशव ने रस, अलंकार, नायिका-भेद, नखशिख, पिंगल तथा काव्य के गुण-दोषादि अन्य तत्त्वों का समावेश अपने ग्रंथों में व्यवस्थित रीति से किया है। परवर्ती आचार्यों को उससे अवगत होने में गौरव का अनुभव हुआ है और जहाँ वे सहमत हुए, उन्होंने अनुकरण भी किया है। मतभेद होते हुए भी किसी ने खुलकर उनका विरोध करने का साहस नहीं किया। उपेक्षा की तो बात ही नहीं उठती। प्रायः सभी मान्य आचार्य उनके कृतित्व से अवगत प्रतीत होते हैं। कुछ ने तो उनका नामोल्लेख भी किया है।

केशव 'सर्वांग-निरूपक आचार्य' न हों तो भी वह 'विविधांग निरूपक आचार्य' तो हैं ही। उन्हें केवल 'नवरस निरूपक आचार्य' समझना उचित नहीं हैं।

**काव्य के सम्बन्ध में केशव की प्रमुख मान्यताएँ :—**

1. सरसता काव्य का एक प्रधान गुण है। 'रसिकप्रिया' में "बिनु बानी न रसाल" (दोहा सं० 13) तथा 'कीजै सरस कवित्र' (दोहा सं० 14) और 'कविप्रिया में' 'सुबरन सरस सुवृत्त' (दोहा सं० 5/1) कहकर उन्होंने अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है।
2. श्रृंगार रस सब रसों से श्रेष्ठ और उनका नायक है—

नवहु रस को भाव बहु, तिन के भिन्न विचार।
सबको केशवदास हरि, नायक है श्रृंगार।।

रसकप्रिया (दोहा सं० 16)

3. नित्य सेव्य श्रीकृष्ण का चरित-स्वरूप नवरसमय है—

कहि केसव सेवहु रसिकजन नवरसमय बृजराज नित।

रसिकप्रिया (छन्द सं० 2)

4. कविता सर्वथा दोष-रहित होना श्रेयस्कर है—

राजत रंच न दोषजुत कविता वनिता मित्र।
बुदक हाला होत ज्यों गंगाघट अपवित्र।।

कविप्रिया (छन्द 4)

कविता, स्त्री और गंगाजल से भरे कलश के समान पवित्र होते हुए भी सदोष होने पर अपवित्र हो जाती हैं।

'दूषनसहित कवित्त' कृतघ्नी प्रभु की तरह असेव्य है। (छन्द 5)

5. अलंकार कविता का सर्वोपरि शोभाकारक धर्म है—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजहीं कविता वनिता मित्त।।

सौन्दर्य वर्धन की दृष्टि से अलंकारों का महत्त्व कविता में जाति, लक्षण, वर्ण-विन्यास, रस, छन्द इत्यादि सबसे अधिक है। यह अलंकार दो प्रकार के होते है :

1. सामान्यालंकार
2. विशिष्टालंकार

इनके भी कई भेदादिभेद हैं।

# उपसंहार

हिन्दी के भक्त कवि, जिनमें सगुण-निर्गुण परम्परा के सभी कवि समाहित हैं, वैदिक ऋषियों और बाल्मीकि जैसे मुनियों की परम्परा में आते हैं जबकि रीति-कवि कालिदास, भवभूति, दण्डी और पण्डितराज जगन्नाथ की परम्परा के जुड़े दिखायी देते हैं। केशवदास पण्डितराज से पहले हुए हैं और इस दृष्टि से लक्षण उदाहरण दोनों की स्वयं रचना करने की उस प्रवृत्ति के प्रेरक कहे जा सकते हैं, जिसका उद्घोष **रसगंगाधर** के रचयिता ने सगर्व किया है।

> निर्माय नूतन मुदाहरणस्वरूपं
> काव्यंमयात्रनिहितं न परस्पर किंचित्।
> किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः
> कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण ॥

यद्यपि संस्कृत-साहित्य में दण्डी आदि कुछ आचार्य स्वरचित उदाहरण देने की क्षमता रखते थे परन्तु यह परम्परा संस्कृत आचार्यों में व्याप्त नहीं हुई और न उनकी निजी विशेषता कही जा सकती है। वस्तुतः यह विशेषता एक प्रवृत्ति के रूप में हिन्दी कवियों में ही लक्षित होती है अतः यह मानना समीचीन है कि पण्डितराज जगन्नाथ, जो शाहजहाँ के दरबार में रहे अकबर और जहाँगीर के दरबारी कवियों के आदर्श एवं काव्य-प्रवृत्ति का अनुसरण कर रहे थे। अकबर के दरबार में बहुसंख्यक हिन्दी कवि आते-जाते थे, जिसका परिचय निम्नलिखित छन्द से मिलता है :—

> पाय प्रसिद्ध पुरंदर ब्रह्म सुधारस अमृत अमृत सानी।
> गोकुल गोप गोपाल गनेस गुनी गुनसागर गंग सुज्ञानी।
> जोध जगन्न जगे जगदीस जगामग जैत जगत्त है जानी।
> कों रे अकब्बर सों न कथी इतने मिलि कै कविता जु बखानी॥

केशवदास ओरछा दरबार में राजकवि और राजगुरु दोनों रूपों में प्रतिष्ठित थे और अकबरी दरबार के किसी भी कवि से प्रतिभा, पाण्डित्य, संवेदनशीलता, समझ और लोकप्रियता में कम नहीं थे वरन् बहुतों के लिए वे आदर्श बन चुके थे। उनकी '**कविप्रिया**' और '**रसिकप्रिया**' ने कुशल चित्रकारों को जितना प्रेरित किया, उतना '**बिहारी सतसई**' और '**रसराज**' को छोड़कर अन्य किसी रीति-ग्रन्थ ने नहीं किया। बिहारी और मतिराम भी केशव से प्रभावित हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। बिहारी को केशवदास का पुत्र माननेवाले रत्नाकर आदि ने अनेक दोहों में केशवदास की उक्तियों एवं भाषा-प्रयोग की विशेषताओं से साम्य लक्षित किया है, जिसे नकारना किसी के लिए सम्भव नहीं है भले ही, वह दोनों के पिता-पुत्र सम्बन्ध को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार न करता

हो। बिहारी के एक दोहे में पुराण-वृत्तियों और मिश्र आस्पद—दोनों को एक व्यंग्य-सन्दर्भ साथ साथ मिलना और केशव के सन्दर्भ में दोनों का वास्तविक सम्बन्ध होना स्थिति को अर्थपूर्ण एवं पुनर्विचारणीय बना देता है। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने केशव 'केशवराय' की 'केशव' से भिन्नता प्रतिपादित करते हुए पिता-पुत्र सम्बन्ध को भ्रामक माना है। तथापि यह विषय अभी विवादास्पद है।

ब्रजभाषा-काव्य को केशव की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने काव्य के शास्त्रीय पक्ष को कवि शिक्षा की दृष्टि से, सम्पूर्णता के साथ ग्रहण करके व्यापक रूप से लक्षण—उदाहरण—परम्परा, जिसका पूर्वाभास कृपाराम, रहीम, करनेस, मोहनलाल आदि से माना जाता है, का साहसपूर्वक स्थापन और निर्वाह किया तथा तत्कालीन भाषा-काव्य में रीति की प्रवृत्ति के लिए एक विशेष आदरपूर्ण स्थान अर्जित किया। पद-रचना की गेय परम्परा से हटकर मुक्तक और प्रबन्ध तथा इतर लोकप्रिय काव्य-रूपों का सम्यक् प्रयोग करके हिन्दी साहित्य को भिन्न एवं विशिष्ट प्रकार से समृद्ध किया। काव्येतर कलाओं का भी उन्हें पर्याप्त ज्ञान था, जिसका उपयोग उन्होंने अपने काव्यों में जगह-जगह कुशलतापूर्वक किया है और उन कलाओं में संगीत और चित्रकला को वरीयता मिली है। विद्वानों ने केशव के तथाकथित अलंकारवादी दृष्टिकोण का त्याग नहीं किया है। 'रस' उन्हें ग्राह्य तथा सुन्दर प्रतीत होता था, जिसका प्रमाण उनकी '**रसिकप्रिया**' से मिलता है। इससे रसों को रसवत् अलंकार के रूप में ग्रहण नहीं किया गया है। '**कवि-प्रिया**' काव्य की समस्त सामग्री को अलंकार कहकर वर्ण्य वस्तु और वर्णन-प्रणाली तथा वर्णकों की सुदीर्घ-परम्परा की वैभव प्रस्तुत अवश्य करती है। उसके उदाहरणों में भी सरसता का पर्याप्त समावेश है। कुछ स्थलों पर रूक्षता-युक्त चमत्कार को अवश्य स्थान मिला है, जैसे चित्रालंकारों के सन्दर्भ में। अनेकार्थी श्लिष्ट काव्य भी क्लिष्ट काव्य हो गया है।

वस्तुत: केशवदास ने अपने युग तक प्रचलित कवि-समयों, वर्णकों, शैलियों तथा भाषा-काव्य की इतर प्रवृत्तियों को संस्कृत काव्य-शास्त्र के आलोक में अति-रिक्त समृद्धि प्रदान करते हुए प्रस्तुत किया है। उनका साहित्यिक योगदान काव्य के नागर-पक्ष को विशेष रूप से उजागर करता है। फिर भी, इसके अन्तर्गत ग्रामीण भाव-सौन्दर्य तथा लोक-रूपों का निषेध नहीं है। स्थान-स्थान पर संस्कृत भाषा और तत्सम शब्दावली का प्रयोग करके उन्होंने ठेठपन से अपने को अलग रक्खा और रूढ़ियों से भिन्न मार्ग अपनाया। कवि के रूप में केशवदास को चन्दवरदाई, विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरा से ऊपर नहीं माना जा सकता तथापि उनका वैशिष्ट्य सर्वमान्य है। उनके जैसा कोई दूसरा व्यक्तित्व दिखायी नहीं देता, यह बात हिन्दीतर साहित्य को ध्यान में रखते हुए भी कहा जा सकती है। रीति-काव्य के समारम्भकर्ता के रूप में केशव का स्थान

चिन्तामणि की अपेक्षा कहीं ऊँचा है। हिन्दी का अन्य कोई आचार्य-कवि भी उनसे अधिक महत्त्व नहीं पा सका। यद्यपि काव्य-शास्त्र निरूपण में अनेक कवियों ने उनसे अधिक पक्षों को समाहित किया है और सर्वांग निरूपक आचार्य कहलाये हैं। स्वतन्त्र रूप से उनके महत्त्व का पुनर्निर्धारण करने की अनेक चेष्टाएँ हुई हैं और आगे भी होंगी पर रीति-काव्य के प्रति जो प्रेरक आकर्षण उन्होंने उत्पन्न किया और जितनी दूर तक अपने परवर्ती कवियों को प्रभावित किया, उसे देखते हुए उनका स्थान साहित्येतिहास में 'उडुगण केशवदास' से कुछ अधिक ही माना जायेगा। 'सूर सूर तुलसी ससि उडुगण केशवदास' में सूर्य और चन्द्र एकवचन हैं पर 'उडुगण' अपने में बहुतों को समाहित किये हुए है। वह अपने अतिरिक्त बहुतों का प्रतिनिधित्व करता है। केशव का यह प्रतिनिधि रूप उनसे विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। अतः उनकी मान्यता मध्यकालीन हिन्दी काव्य में अक्षुण्ण है। उनमें कवित्व और आचार्यत्व का सन्तुलन भी औरों से अधिक दिखायी देता है। उनका उभयपक्षीय समृद्ध व्यक्तित्व ही उनके असाधारण समादर का मुख्य कारण रहा है। उनके काव्य में युगीन परिवेश का विशद, सूक्ष्म, वास्तविक और विश्वसनीय निरूपण हुआ है। उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता भी प्रायः असंदिग्ध ही है। केशव की मान्यता का यह अतिरिक्त पक्ष है, जिसकी ओर अन्वेषकों का पूरा ध्यान केन्द्रित नहीं हुआ है। कवि रूप में 'देव' को केशव से बड़ा माना गया है पर आचार्य रूप में केशवदेव उनसे बड़े दिखायी देते हैं। छन्द वैविध्य की दृष्टि से कदाचित् कोई भी कवि समानता नहीं कर सकता। हीन-भाव रखते हुए भी भाषा को देव भाषा संस्कृत की समकक्षता दिलाने में केशव का योगदान किसी हिन्दी कवि से कम नहीं है। यह दूसरी बात हैं कि उनकी' **रामचन्द्रिका' 'रामचरितमानस'** जैसी लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकी। तथापि उसके संवाद लोक-प्रिय नाट्य रूप रामलीला के अंग बने, यह तथ्य भी उपेक्षनीय नहीं। शब्द-ग्रहण में उनकी नीति किसी प्रकार की संकीर्णता रखती दिखायी नहीं देती। वे 'चरन धरत चिन्ता करत' के आदर्श को माननेवाले अत्यन्त सजग एवं सुवर्णन्वेषी कवि थे। किसी भी प्रकार का काव्य-दोष उन्हें सर्वथा असह्य था। यदि शुक्ल जी जैसे समीक्षक उनके दोषों को असह्य मानते हैं तो यह केशव की काव्य-दृष्टि की विजय ही कही जायेगी।

# संचयन-I

## रसिक प्रिया

### श्रीगणेश-वंदना (छप्पय)

एक-रदन, गजबदन, सदनबुद्धि, मदन-कदन सुत।
गौरि-नंद आनंद-कंद, जग-बंद, चंद-युत।
सुख-दायक, दायक-सुकीर्ति, जगनायक-नायक।
खल-धायक धायक-दरिद्र सब लायक-लायक।
गुरु-गुन अनंत, भगवंत-भव, भनतिवंत भव-भय-हरन।
जय केसवदास निवास-निधि, लंबोदर, असरन-सरन ॥१॥

### श्रीकृष्ण वंदना (छप्पय)

श्रीबृषभानु-कुमारि-हेत सृंगार-रूप भय।
बास हास-रस हरे, मातु-बंधन करुनामय।
कैसी-प्रति अति रौद्रं, बीर मारो बत्सासुर।
भय दावानल-पान, पियो बीभत्स बकी-उर।
अति अद्भुत बंचि बिरंचि-मति, सांत संततै सोच चित।
कहि केसव सेवहु रसिक जनु, नवरसमय ब्रजराज नित ॥2॥

### अथ प्रच्छन्न-संयोग-शृंगार (सवैया)

बन मैं बृषभानु-कुमारि मुरारि रमैं रुचि सों रस-रूप पियें।
कल कूजत पूजत काम-कला बिपरीत रची रति केहल कियें।
कनि सोभित स्याम जराइ जरी अति चौकी चलै चल चारु हियें।
खतूल के झूल झुलावत केसव भानु मनों सनि अंक लियें॥ 20॥

### अथ प्रकाश अनुकूल, यथा—(सवैया)

'केसव' सूधे बिलोचन, सूधी बिलोकनि कों अवलोकें सदाई।
सूधियै बात सुनें समुझें कहि आवति सूधियै बात सुहाई।
सूधी सी हाँसी सुधानिधि सो मुध सोधि लई बसुधा की सुधाई।
सूधे सुभाइ सबै सजनी बस कैसें किये अति टेढ़े कन्हाई॥5॥

### अथ प्रकाश—शठ, यथा—(कवित्त)

कानननि रँग के रँगे नैननि के डोलौं संग
नासा अंग रसना के रसहीं समाने हौ।
और गूढ़ कहौं मूढ़ हौं जु, जानि जाहु,
प्रौढरूढ़ केसोदास नीकें करि जाने हौ।
तन आन मन आन, कपट निधान कान्ह,
साँची कहौ मेरी आन काहे कौं डराने हौ।
वे तौ हैं बिकानी हाथ मेरे हौं तिहारें हाथ,
तुम ब्रजनाथ हाथ कौन के बिकाने हौ ।।3।।

### श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

भाल गुही गुन लाल लटैं लपटीं लर मोतिन की सुखदैनी।
ताहिं बिलोकति आरसी लैं कर आरस सों इक सारसनैनी।
केसव कान्ह दुरें दारसी पारसी उपमा मति की अति पैनी।
सूरजमंडल में ससिमंडल मध्य धसी जनु जाइ त्रिबैनी ।।6।।

### श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न श्रवण दर्शन, यथा—(सवैया)

सौंह दिवाय दिवाय सखी इक बारक काननि आनि बसाए।
जाने को केसव काननि तें कित हैं कब नैननि मांझ सिधाए।
लाज के साज धरेई रहे सब नैनानि ले मनहीं सों मिलाए।
कैसी करो अब क्यों निकसैं री हरेंई हरें हिय में हरि आए ।।5।।

### धाइ के घर को मिलन यथा—(कवित्त)

हँसत खेलत खेल मंद भई चंद-दुति,
कहत कहानी और बूझत पहेली-जाल।
केसोदास नींद-बस अपने अपने घर,
हरें हरें उठि गए बालिका सकल बाल।
घोरि उठि गगन सघन घन चहुँ दिसि,
उठि चले कान्ह धाइ बोलि उठी तिहिं काल।
आधी राति अधिक अँध्यारे मांझ जैहौ कहाँ,
राधिका की आधी सेज सोई रहौ प्यारे लाल ।।28।।

### सूने घर को मिलन, यथा—(कवित्त)

देखत ही चित्र सूनी चित्रसाला बाला आजु,
रूप की सी माला राधा रूपकु सुहाए री।
नूपुर के सुरनि के अनुरूप तानैं लेति,
पग तल ताल देति अति मन भाए री।
ऐसे में देखाई दीनी औचकाँ, कूँवर कान्ह,
जैसे भए गात तैसे जात न बताए री।
केसोदास कहै परै अलज सकल से न,
जलज से लोचन जलद से ह्वै आए री ॥29॥

### अथ श्रीराधिकाजू को लीला हाव, यथा—(सवैया)

पायन को परिबो अपमान अनेक सों केसव मान मनैबो।
मीठो तमोर खवाइबो खैबो बिसेषि चहूँ दिसि चौंकि चितैबो।
चीर कुचीलनि ऊपर पौढिबो पातनि के खरकें भजि ऐबो।
आँखिनि मूदि कै सीखति राधिका कुंजनि तैं प्रतिकुंजनि जैबो ॥22॥

### श्रीकृष्णजू को ललित हाव, यथा—(सवैया)

चपला पट, मोर-किरीट लसै मघवा-धनु सोभ बढ़ावत हैं।
मृदु गाजत आवत बेंनु बजावत मित्र मयूर नचावत हैं।
उठि देखि भटु भरि लोचन चातक—चित्त की ताप बुझावत हैं।
घनस्याम घनाघन-बेष धरें जु बने बन तें ब्रज आवत हैं ॥26॥

### श्रीकृष्णजू को मोट्टाइत हाव, यथा—(सवैया)

भोजन के वृषभानु सभा महँ बैठे हैं नंद सदा सुखकारी।
गोप घने, बलबीर बिराजत, खात बनाइ बिरी गिरिधारी।
राधिका झाँकी झरोखनि झाँप सी लागि गिरे, मुरझाइ बिहारी।
सोर भयो सकुचं समुझें हरवाइ कह्यो हरि, लागी सुपारी ॥50॥

### श्रीकृष्ण को बोधक हाव, यथा—(सवैया)

सखि गोकुल गोप-सभा महँ गोबिंद बैठे हुते देति कों धरि कै।
जनु केसव पूरनचंद लसै चित चारु चकोरनि को हरि कै।
तिनकों उलटो करि आनि दियो किहूँ नीरज नीर नएं भरि कै।
कहि काहे तें नेंक निहारि मनोहर फेरि दयो कलिका करि कै ॥56॥

### प्रच्छन्न प्रोषितपतिका, यथा—(सवैया)

केसव कैसेहूँ पूरबपुन्य मिल्यो मनभावतो भाग भरयो री।
जानै को माई कहा भयो क्योंहूँ जु औंधि को अधिक घोस टरयो री।
ताकहुँ तू न अजौं हँसि बोले जऊ मेरो मोहन पाइ परयो री।
काठहू तें हठ तेरो कठोर इतें बिरहानल हू न जरयो री॥20॥

### प्रच्छन्न प्रेमाभिसारिका, यथा—(कवित्त)

लीनो हम मोल अनबोलें आई जानयो मोह,
मोहि घनस्याम घनमाला बोलि लाई है।
देख्यो ह्वै है दुख जहाँ देह हू न देखो परै,
देखी कैसें बाट केसो दामिनी दिखाई है।
ऊँचे नीचे बीच-कीच कंटकनि परे पग,
साहस-गयंद-गति अति सुखदाई है।
भागी मयकारी निसि निपट अकली तुम,
नाहीं प्राननाथ साथ प्रेमजू सहाई है॥28॥

### प्रच्छन्न गर्वाभिसारिका, यथा—(सवैया)

लाड़िली लीली कलोरी लुरी कहूँ लाल लुके कहूँ अंग लगाइ कै।
आजु तो केसव कैसेहुँ लेरुवै लागन देति न न देखहु आइ कै।
बेगि चलौ उठि आई लिवावन दौरि अकेलियै हौं अकुलाइ कै।
भूलिहुँ गोकुल गांउ में गोबिंद कीजै गरूर न गाइ चराइ कै॥30॥

### उत्तमा, यथा—(सवैया)

होइ कहा अब के समुझे न तबै समुझे जब हे समुझाए।
एक ही बंक बिलोकनि माहँ अनेक अमोल बिके बिकाए।
जानिपनो न जनावहु जी जनमावधि लौं उहि जानि हौ पाए।
बात बनाइ बनाइ कहा कहौ लेहु मनाइ मनाइ ज्यों आए।

### मध्या, यथा—(सवैया)

भूलेहुँ सूधें नहीं चितयो इहि कान्ह कियो लचि लालच केतो।
हाहा कै हारि रहे मनमोहन पाइ परे त्यों परेई रहे तौ।
हौं तो यहै तब ही की विचारति होतौ गुमान क्यों याहि धौं एतौ।
लांबी लटैं अरु पातरी देह जु नैंक बड़ी बिधि आँखि न देतौ॥39॥

### श्रीराधिकाजू की निद्रा, यथा—(सवैया)

आएँ तें आवैगी आँखिनि आगें ही डोलिहै मानु मोल लई है।
सोवै न सोवन देह न यों तब सोवन में उन साथ दई है।
मेरियै भूलि कहा कहौं केसव सौत कहूँ तें सहेली भई है।
स्वारथ ही हितु है सबकै परदेस गएं हरि नींदौ गई है ॥4॥

### धाइ को वचन कृष्ण सों यथा—(कवित्त)

थोरी सी सुदेस बैस दीरघ नयन केस,
गौरा जू सी गोरी भोरी भवजू की सारी सी।
साँचे की सी सोंधो, देह सुधा सों सुधारी, धाइ,
धारी देवलोक तें किसिधु तें उधारी सी।
आजु यासों हँसि खेलि बोलि चालि लेहु लाल,
काल्हि ऐसी ग्वालि लाऊँ काम की कुमारी सी ॥4॥

### परोसिन को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

हाँसी में बातक वासों कही हँसिवे हूँ कही सु हितै करि लेख्यो।
आँखै मिली न मिली सखियाँ मिलबोई सु केसव क्यों अवरेख्यो।
चिच्याइ मरै चुप साधे कि चातक स्वाति समें ही सवै सु बिसेख्यो।
आजु हीं क्यों वह आवै इहाँ जिनि अगि लगेंहूँ न आंगन देख्यो ॥2॥

### बरइनि को वचन राधिका सों, यथा—(कवित्त)

मैन ऐसो मन मृदु मृदुल मृनालिका के,
सूत ऐसे सुर धुनि मनहि हरति हैं।
दार्‌यो कैसे बीज दाँत, पात से अरुन ओठ,
केसोदास देखि दृग आनंद भरति हैं।
एरी मेरी तेरी मोसि भवाति भलाई तातें,
बूझति हौं तोहि और बूझत डरति हैं।
माखन सी जीभ, मुख कंज सो कोवर कहु,
काठ सी कठठी वातें कैसें निकरति हैं ॥15॥

### चुरिहेरिन को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

आपु न हूजै दुखी दुख जाके सु ताही कहा कबहुँ दुख दीजै।
जा बिन और सुहाइ न केसव ताहि सुहाइ सु तौ सब कीजै।
भाग बड़े जु रची तुम सों वह तौ बिझकाइ कहौ कह लीजै।
जौ रिस जाइ तौ जैये मनावन, तातो है दूध सिराइ तौ पीजै ।।20।।

### कृष्ण को उराहनो—(कवित्त)

सौंहनि को सोच न सकोच काहू बीच की को
पोंछौ प्यारे पीक—लीक लोचन किनारे की।
माखन की चोरी की है थोरी थोरी मोहू सुधि।
जानति बिसेष वहै जोरी है जु बारे की।
मेरियै कुमति और कहा कहौं केसोदास
लागति है लाल लाज इहाँ पाइँ धारे की।
एती है झुठाई, वह अबहीं रूठाई यह
छारहू तौ छूटी नाहिं पाइनि के पारे की ।।9।।

### श्रीकृष्ण को करुण रस, यथा—(कवित्त)

चंपे की सी कली भली केसव सुबास भरी,
रूप की सी मुजरी मधुप मम भाइयै।
वेद की सी बानी अति बानी तें सयानी देव
राइ की सी रानी जानी जग सुखदाइयै।
काम की कला सी, चपला सी, काम अबला सी
कमला सी देह धरें पूरे पुन्य पाइयै।
कौनें कीनी निपट कुचालि जाति ग्वारि ऐसी
राधिका कुँवरि पर गोरस बिचाइयै ।।20।।

### राधिकाजू को वीर रस, यथा—(कवित्त)

गति गजराज साजि देह की दिपति बाजि,
हाव रथ भाव पत्तिराजि चली चाल सों।
'केसोदास' मंदहास असि कुच भट भिरे
भेंट भए प्रतिभट भाले नखजाल सों।

लाज साजि कुलकानि-सोच पोच भय भानि,
भौहैं धनु तानि बान लोचन बिसाल सों।
प्रेम को कवच कसि साहस सहायक लै
जीत्यो रति-रन आजु मदन गुपाल सों ॥25॥

### अन्यच्च, यथा—(कवित्त)

ब्रज की कुमारिका वे लीनें सुक-सारिका
पढ़ावैं कोक कारिकानि केसव सवै निबाहि।
गोरी गोरी भोरी भोरी थोरी थोरी वैस फिरैं
देवता-सी दौरी दौरी आई चोराचोरी चाहि।
बिन गुन तेरी आनि भृकुटी कमान तानि
कुटिल-कटाछ-बान यहै अचरज आहि।
एते मान ढीठ ईठ तेरो को अदीठ मन
पीठ दै दै मारती पै चूकती न कोऊ ताहि ॥35॥

### श्रीकृष्ण को समरस, यथा—(सवैया)

खारिक खात न दारयौंइ दाख न माखन हूँ सहूँ मेटी इठाई।
केसव ऊख महूखहु दूखत आई हौं तो पह छाड़ि जिठाई।
तो रदनच्छद को रस रंचक चाखि गए करि केहूँ ढिठाई।
ता दिन तें उनि राखी उठाय समेत-सुधा बसुधा की मिठाई ॥39॥

### अथ सात्वती-लक्षण यथा—(कवित्त)

'केसोदास' लाल लाख भातिनि के अभिलाष
बारि दै री बावरी न बारि हियो होरी सी।
राधा हरि केरी प्रीति सबतें अधिक जानि
रति रतिनाथ हू में देखौं रति थोरी सी।
तिन कहिं भेद न भवानि हू पै पारयो जाइ
भानत में भारती की भारती है भोरी सी।
एकै गति एकै कति एकै प्रान एकै मन
देखिबे कौं देह द्वै हैं नैननि की जोरी सी ॥19॥

# कविप्रिया

## अथ रसहीन नग्न-वर्णन-(सवैया)

तोरी तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी।
पान खबाय सुधाधर पान कै पाय गहे तैसें हौं न गहौंगी।
केशव चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी।
कै फिर चूमन दै मुख मोंहि कि आपनि धाइ सों जाइ कहौंगी ॥२॥

## अथ कुटिल वर्णन [सवैया]

भोर जगी बृषभानुसुता अलसी निसि कुंजबिहारी।
केसव पोछति अंचल-छोरनि पीक सु लीक गई मिटि कारी।
बंक लगे कुच बीच नखच्छत देखि भई दृग दूनी लजारी।
मानौ बियोग-बराह हन्यो जुग सैल की संधिनि इँगवै डारी ॥10॥

## अथ मंडल-वर्णन—(कवित्त)

मनिमय आलबाल थलज जलज रबि,
मंडल में जैसे मति मोहै कबितानि की।
जैसे सबिसेष, परिबेष रेख, में असेष,
सोभित सुबेष सोम सीमा सुखदानि की।
जैसे बँकलोचनि कलित कर कंकननि,
बलित ललित दुति प्रगट प्रभानि की।
केसोदास तैसे राजै रास में रसिक लाल,
आसपास मंडली बिराजै गोपिकानि की ॥59॥

## अथ देश-वर्णन (कवित्त)

आछे आछे असन, बसन, बसु, बासु, पसु,
दान, सनमान, जान, बाहन बखानियै।
लोग, भोग जोग, भाग, बाग, राग, रूपजुत,
भूषननि भूषित, सुभाषा मुख जानियै।

सातौ पुरीं तीरथ, सरित, सब गंगादिक,
केसोदास पूरन पुरान, गुन गानियै।
गोपाचल ऐसे गढ़, राजा रामसिंघजू से,
देसनि की मनि कहि मघ्यदेस मानियै ।।13।।

## अथ नगर-वर्णन—(कवित्त)

चहूं भाग बाग बन मानहु सघन घन,
सोभा की सी साला, हंसमाला सी सरितबर।
ऊँचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु,
कौसिक की कीनी गंगा खेलत तरल तर।
आपने सुखनि आगे निंदत्त, नरिंद और,
घर घर देखि जत देवता से नारि-नर।
"केसोदास" त्रास जहाँ केवल अदिष्ट ही को
वारियै नगर और ओड़छे नगर पर ।।5।।

## अथ समुद्र-वर्णन- (सवैया)

सेष धरै धरनी, धरनी धरै केसव जीव रचे बिधि जेते।
चौदह लोक समेत तिन्हैं हरि के प्रति रोमनि में चित चेते।
सोवत तेऊ सुने इनही में अनादि अनुत अगाध हैं एते।
अद्भुत सागर की गति देखहु सागर ही महँ सागर केते ।।26।।

## अथ वर्षा ऋतु-वर्णन—(कवित्त)

भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूषन जराइ जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी मुख सुख सुखमा ससी की नैन,
अमल कमल-दल दलित निकाई है।
केसोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है।
अंबर-बलित मति मोहै पीलकंठजू की,
कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है ।।32।।

## अथ विशेष-लक्षण (सवैया)

साँप को कंकन, माल कपाल, जटान को जूट, रही जटि आँतें।
खाल पुरानी, पुरानोई बैल, सु और की और कहै बिष-मातैं।
पारबती-पति-संपति देखि, कहै यह केसव संभ्रम तातैं।
आपुन माँगत भीख भिखारिन देत दई मुँहमाँगी कहाँ तैं ॥25॥

## अथ फाल्गुन-वर्णन (छप्पय)

लोकलाज तजि राज रंक निरसंक बिराजत।
जोइ आवत सोइ कहत करत पुनि हसत न लाजत।
घर घर जुवती जुवनि जोर गहि गाँठिनि जोरहिं।
बसन छीनि मुख माँडि, आँजि लोचन तिन तोरहिं।
पटबास सुबास अकास उड़ि भुवमंडल सब मंडियै।
कह केसवदास बिलासनिधि फागुन फागुन छंडियै ॥35॥

## दस वर्णन (कवित्त)

केसोदास इंद्रजीत भूतल अभूत पंच-
भूत की प्रभूति भवभूति को सरनु है ॥22॥
दरसै न सुर से नरेस सिर नावैं नित,
षठ दरसन ही को सिर नाइयतु है।
केसोदास पुरी, पुरपुंजन को पालक, पै
सात हीं पुरी सों पूरो प्रेम पाइयतु है।
नायका अनेकन को नायक नगर नव,
अष्ट नायकनि ही सों मन लाइयतु है।
नवधाई हरि को भजन इंद्रजीतजू को,
दस अवतार ही को गुन गाइयतु है ॥23॥

## द्वि-अर्थ (कवित्त)

धरत धरतिन ईस सीस चरनोदकनि,
गावत चतुरमुख सब सुखदानियै।
कोमल कमल कर कमलाकर कमल
कलित बलित गुन क्यों न उर आनियै।

हिरनकसिपु दानकारी प्रह्लाद हित,
द्विजपद उरधारी वेदन बखानियै।
केसोदास दारिद दुरद के बिदारिबे कौं,
एकै नरसिंह की अमरसिंह जानियै ॥30॥

## अथ अद्भुत रसवत (कवित्त)

केसोदास बेदबिधि साथहीं बनाइ व्याध,
सबरी कबहि सुचि संहिता सिखाई ही।
बेषधारी हरिवेष देख्यो हो असेष जग,
तारका कों कौने सीख तारक पढ़ाई ही।
बारानसी बारन कज्यो हो कब बसबासु,
गनिका कबहि मनिकर्निका अन्हाई ही।
पतितन पावन करत जौ न नंदपूत,
पूतना कबीं पतिदेवता कहाई ही ॥62॥

## अथ मेहदी-संयुत पाणि-वर्णन (सवैया)

राधिका रूपनिधान के पानिनि आनि मनौछति की छबि छाई।
दीह अदीहन सूक्षम थूल गही दृग गोरी की दौरी गुराई।
महँदीमय बिंदु बने तिनमें मनमोहन के मन मोहनी लाई।
इंदुबधू अरबिंद के मंदिर इंदिरा कों मनौ देखन आई ॥30॥

## अथ हास वर्णन (कवित्त)

किधौं मुखकमल में कमला की जोति, किधौं
चारु मुखचंद्र चंद्र-चंद्रिका चुराई है।
किधौं मृगलोचन मरीचिका मरिचि किधौं
रूप की रुचिर रुचि रुचि सों दुराई है।
सौरभ की सोभा कि नसन धन-दामिनी कि
केसव चतुर चित ही की चतुराई है।
एरी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हाँसी मेरे
मोहन की मोहनी कि गिरा की गुराई है ॥41॥

## अथ समस्त भूषण-वर्णन (कवित्त)

बिछिया अनौट बाँकें घूघरी जराहू जरी
जेहरी छबीली क्षुद्रघंटिका की जालिका।
मुंदरी उदार पौंची कंकन बलय नीके चुरी
कंठ कंठमाल हार पहिरें गुपालिका।
बेनीफूल सीसफूल कर्नफूल माँगफूल
खुटिला· तिलक नकमोती बनी बालिका।।
केसोदास नीलबास ज्योति जगमगि रही
देहु धरे देखियति मानौ दीपमालिका।

## अथ अंगदीप्ति वर्णन (सवैया)

राधा के अंग गुराई-सी और गुराई बिरंचि बनावन लीनी।
कै मनु बुद्धि बिबेक सों एक अनेक बिचारनि मैं दृग दीनी।
बानिक तो सी बनी न बनाउत केसव कैसे ह्वै ह्वै गई हीनी।
लै तब केसर केतकी चंपक कुंदन के तन दामिनी कीनी।।४४।।

# संचयन-II

## रामचन्द्रिका से

बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारे सब कमल
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
विपति हरत हठि पदिमनी के पात सम
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष कों।
दूरि कै कलंक-अंक भद-सीस-ससि सम
राखत है केसोदास दास के बपुष कों।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै
दसमुख मुख जोवैं गजमुख मुख कों ॥1॥

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाइ
ऐसी मति उदित उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध रिषिराज तपबृद्ध
कहि कहि हारे सब कहि न काहू लई।
भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है
केसोदास क्यों हू ना बखानी काहू पै गई।
पति बनैं चारमुख पूत बनैं पाँचमुख
नाती बनें षटमुख तदपि नई नई ॥2॥

पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान परि-
पूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति कों।
दरसन देत जिन्हैं दर्शन समुझैं न
नेति नेति कहैं बेद छाँड़ि भेद जुक्ति कों।
जानि यह केसोदास अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति कों।
रूप देहि अनिमाहि गुन देहि गरिमाहि
नाम देहि महिमाहि भक्ति देहि मुक्ति को ॥3॥

## (विश्वामित्र-विजय)

आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहिं के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।
भूपन की तुम ही धरि देह बिदेहन में कल कीरति गाई।
'केसव' भूषन कों भवभूषन भू-तल में तनुजा उपजाई ॥24॥

## (दंडक)

को है दमयंती इंदुमती रति रातिदिन,
होहि न छबीली छिनछबि जौ सिंगारिये।
'केसव' लजात जलजात जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो बिरूप से निहारिये।
मदन निरूपन निरूपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूप कै बिचारिये।
सीताजू के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही रूपक तौ वारि वारि डारिये ॥59॥

## परशुराम (दंडक)

अमल सजल घनस्याम बपु 'केसोदास',
चंद्रहु तें चारु मुख सुषमा को ग्राम है।
कोमल कमलदल दीरघ बिलोचननि,
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है।
बालक बिलोकियत पूरन पुरुष गुन,
मेरो मन मोहियत ऐसो एक धाम है।
बैर मानि बामदेवजू को धनु तोर्‌यो इन,
जानत हौं बीस बिसे रामवेष काम है ॥14॥

## (दंडक)

मयकी सुता धौं को है मोहनी है मोहै
मन आजु लौं न सुनीसु तो नैननि निहारिये।
देह दुति दामिनी हू नेह काम कामिनी हू,
एक लोम ऊपर पुलोमजा बिचारिये।

भाग पर कमला सुहाग पर बिमला हू,
बानी पर बानी 'केसोदास' सुखकारिये।
सात दीप सात लोक सातहु रसातल की
तीयन की गीता सबै सीता पर वारिये ॥

## (दंडक)

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की
सिख के धूम जोनि मध्य रेखा सुधाधाम की।
चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माहि,
संवर छड़ाइ लई कामिनी के काम की।
पाखंडी की श्रद्धा के मठेस बस एकादसी,
लीनी केशवराज साखा सुद्ध साम की।
'केसव' अदृष्ट साथ जीवजोति जैसी तैसी,
लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की ॥

## राम (दुर्मिला)

निज देखौं नहीं सुभ गीतहि सीतहि कारन कौन कहौ अवहीं।
अति मो हित कै बन माँझ गई सुर-मारग में मृग मार्यो जहीं।
कटु बात कछू तुमसों कहि आई किधौं तेहि त्रास डेराइ रहीं।
अब है यह पर्नकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मन होइ नहीं ॥27॥

## लक्ष्मण (चंद्रकला)

कहि 'केसव' जाचक के अरि चंपक सोक असोक लिये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षन जानि तजे डरिकै।
सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आए रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिवाय को कछु सोधु कहौ करुना कर नामय सों करुना करिकै ॥41॥

## (पद्धटिका)

यह सूरकिरन तम-दुखहारि। ससिकला किधौं उर-सीतकारि।
कल कीरति सी सुभ सहितनाम। कै राज्यश्री यह तजी राम ॥79॥
कै नाराय-उर सम लसंति। शुभ अंकन ऊपर श्रीबसंति।
बर बिद्या सी आनंददानि। जुत अष्टापद मन सिवा मानि ॥80॥

जनु माया अक्षरसहित देख। कै पत्री निस्चयदानि लेखि।
प्रियप्रतीहारिनी सी निहारि। श्रीरामो जय उच्चारिकारि ।।81।।
पिय पठई मानो सखि सुजान। जगभूषन को भूषन-निधान।
निज आई हमकों सीख देन। यह किधौं हमारो मरम लेन ।।82।।

## (विजय)

भूति बिभूति पियूषहु की बिष ईस सरीर कि पाई बियो है।
है किधौं 'केसव' कस्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै।
संत हियो कि बसैं हरि संतत सोभ अनंत कहै कबि को है।
चंदन नीर तरंग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै ।।14।।

## (दोहा)

गंगासागर सों बड़ो साधुन को सतसंग।
पावन करि उपदेस अति अद्‌भुत करत अभंग ।।9।।
धर्मधीरता बिनयता, सत्य सील आचार।
राजश्री न गनै कछू, बेद-पुरान-बिचार ।।22।।

## (विजय)

राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानौ प्रतापहुतासन-धूम सो केसोदास अकास न माई।
मेटिके पंच प्रभूत विधौं बिधि रेनुमयी नव दीति चलाई।
दुख्ख निवेदन कौं भुवभार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई ।।9।।

## (दुर्मिला)

अति रोषरसे कुस केसव श्रीरघुनायक सों रनरीति रचैं।
तेहि बार न बार भई बहु बारन खग्ग हने न गिनें बिरचैं।
तहं कुंभ फबैं गजमाति कटैं ते चले बहि स्रोनित रोचि रचैं।
परिपूरन पूर पनारन तैं जुनु पीक कपूरन की किरचैं ।।15।।

## भारतीय साहित्य के निर्माता

भारतीय साहित्य के इतिहास निर्माण की दीर्घ यात्रा में जिन महान् प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिभाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उनका परिचय सामान्य पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस पुस्तकमाला का प्रकाशन आरम्भ किया गया है। इसके अन्तर्गत अब तक हिन्दी में निम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :

| | |
|---|---|
| लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ | हेम बरुआ |
| बंकिमचन्द्र चटर्जी | सुबोधचन्द्र सेनगुप्त |
| बुद्धदेव बसु | आलोकरंजन दासगुप्त |
| चण्डीदास | सुकुमार सेन |
| ईश्वरचन्द्र विद्यासागर | हिरण्मय बनर्जी |
| जीवनानन्द दास | चिदानन्द दासगुप्त |
| काजी नजरुल इस्लाम | गोपाल हाल्दार |
| महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर | नारायण चौधुरी |
| माणिक बन्द्योपाध्याय | सरोजमोहन मित्र |
| माईकेल मधुसूदन दत्त | अमलेन्दु बोस |
| प्रमथ चौधुरी | अरुणकुमार मुखोपाध्याय |
| राजा राममोहन राय | सौम्येन्द्रनाथ टैगोर |
| ताराशंकर बन्द्योपाध्याय | महाश्वेता देवी |
| श्रीअरविन्द | मनोज दास |
| सरोजिनी नायडू | पद्मिनी सेनगुप्त |
| तरुदत्त | पद्मिनी सेनगुप्त |
| गोवर्धनराम | रमणलाल जोशी |
| मेघाणी | वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी |
| नानालाल | उमेदभाई मणियार |
| नर्मदाशंकर | गुलाबदास ब्रोकर |
| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र | मदन गोपाल |
| बिहारी | बच्चन सिंह |
| देवकीनन्दन खत्री | मधुरेश |
| घनानन्द | लल्लन राय |
| हरिऔध | मुकुन्ददेव शर्मा |
| जयशंकर प्रसाद | रमेशचन्द्र शाह |
| जायसी | परमानन्द श्रीवास्तव |
| कबीर | प्रभाकर माचवे |
| केशवदास | जगदीश गुप्त |
| महावीर प्रसाद द्विवेदी | नन्दकिशोर नवल |
| नन्ददुलारे वाजपेयी | प्रेमशंकर |
| प्रेमचन्द | प्रकाशचन्द्र गुप्त |
| राहुल सांकृत्यायन | प्रभाकर माचवे |
| रैदास | धर्मपाल मैनी |
| श्यामसुन्दरदास | सुधाकर पाण्डेय |
| सुभद्राकुमारी चौहान | सुधा चौहान |
| यशपाल | कमला प्रसाद |

| | |
|---|---|
| बी० एम० श्रीकंठय्य | ए० एन० मूर्तिराव |
| बसवेश्वर | एच० थिप्पेरुद्रस्वामी |
| विद्यापति | रमानाथ झा |
| ए० आर० राजराज वर्मा | के० एम० जॉर्ज |
| चन्दु मेनन | टी० सी० शंकर मेनन |
| कुमारन् आशान | के० एम० जॉर्ज |
| महाकवि उल्लूर | सुकुमार अषिकोड |
| वल्लत्तोल | बी० हृदयकुमारी |
| दत्त कवि | अनुराधा पोतदार |
| ज्ञानदेव | पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे |
| हरिनारायण आपटे | रामचन्द्र भिकाजी जोशी |
| केशवसुत | प्रभाकर माचवे |
| नामदेव | माधव गोपाल देशमुख |
| नरसिंह चिंतामण केलकर | रामचन्द्र माधव गोले |
| श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर | मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे |
| तुकाराम | भालचन्द्र नेमाड़े |
| फ़कीरमोहन सेनापति | मायाधर मानसिंह |
| राधानाथ राय | गोपीनाथ महन्ती |
| सरलादास | कृष्णचन्द्र पाणिग्राही |
| भाई वीर सिंह | हरबंस सिंह |
| दुरसा आढ़ा | रावत सारस्वत |
| जाम्भोजी | हीरालाल माहेश्वरी |
| मुँहता नैणसी | बृजमोहन जावलिया |
| प्रिथीराज राठौड़ | रावत सारस्वत |
| सूर्यमल्ल मिश्रण | विष्णुदत्त शर्मा |
| बाणभट्ट | के० कृष्णमूर्ति |
| भवभूति | गो० के० भट |
| जयदेव | सुनीति कुमार चटर्जी |
| कल्हण | सोमनाथ धर |
| क्षेमेन्द्र | ब्रजमोहन चतुर्वेदी |
| माघ कवि | चण्डिकाप्रसाद शुक्ल |
| सचल सरमस्त | कल्याण बू० आडवाणी |
| शाह लतीफ़ | कल्याण बू० आडवाणी |
| भारती | प्रेमा नन्दकुमार |
| इलंगो अडिगल | मु० वरदराजन |
| कम्बन | एस० महाराजन |
| माणिक्कवाचकर | जी० वंमीकनाथन |
| नम्माळवर | ए० श्रीनिवास राघवन |
| पोतन्ना | दिवाकर्ल वेंकटावधानी |
| वेदम वेंकटराय शास्त्री | वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ) |
| गुरजाड | नार्ल वेंकटेश्वर राव |
| वीरेशलिंगम् | नार्ल वेंकटेश्वर राव |
| वेमना | नार्ल वेंकटेश्वर राव |
| ग़ालिब | मुहम्मद मुजीब |